CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5'1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	(v) B.A. Part I (Additional/deficient subject)	[illegible].00
5.	(i) B.A./B.Sc. Part II Honours	Rs. 55.00
	(ii) B.A./B.Sc. Part III Honours	Rs. 55.00
6.	(i) B.Ed. Full & Compartment subject	Rs. 70.00
	(ii) B.Ed. Additional subject	Rs. 25.00
7.	B.Com. Parts I, II & III (Full & Compartment).	Rs. 50.00
8.	(i) M.A. I (All subjects)	Rs. 60.00
	(ii) M.A. I Additional/Optional paper	Rs. 30.00
	(iii) M.A. II (All subjects)	Rs. 60.00
	(iv) M.A. II Additional/Optional Paper	Rs. 30.00
	(v) M.A. I & II (Re-appear candidates)	Rs. 25.00 per paper subject to a maximum of Rs. 60.00 in one part.
9.	(i) M.A. Semester System	Rs. 60.00
	(ii) M.Sc. Semester System	Rs. 70.00
	(iii) M.A./M.Sc. (Re-appear Candidates)	Rs. 25.00 per subject/paper subject to a maximum of the fee prescribed for the examination concerned.

REGISTRAR
Panjab University, Chandigarh

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

* ॐ *

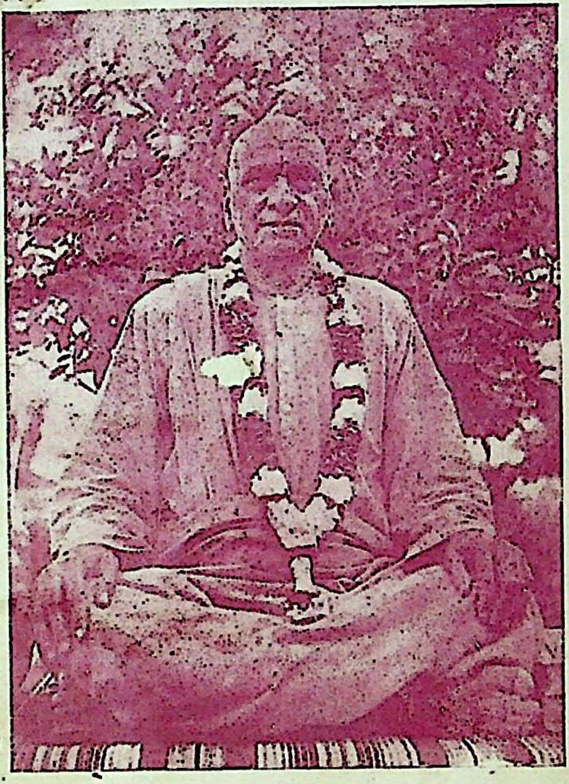

अनन्त श्रीविभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ

स्वामिविष्णुदेवानन्दगिरि जी महाराज महामण्डलेश्वर,

कैलासाश्रम हृषीकेश, [देहरादून]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्माष्टक

(१)

यह तन मैं नहीं हूँ न मेरा है यह तन,
यह है पञ्च भौतिक विकारी अचेतन।
मैं हूँ इनका द्रष्टा निराकार चेतन,
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

(2)

न हूं प्राण पांचों न कर्मेन्द्रियां हूं,
न हूं पञ्चकोशः न ज्ञानेन्द्रियां हूं।
अतीन्द्री हूं ज्ञाता मैं इनका प्रकाशक,
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

(3)

न हूं चित्तहंकार बुद्धि न मन हूं,
[illegible] सुषुप्ति न जाग्रत स्वप्न हूं।
मैं इन से परे आत्मा ज्ञान घन हूं,
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

(4)

न है राग द्वेषादि का लेश मुझ में,
न है पुण्य पापों का भी शेष मुझ में।
न है सुख दुःखों का आवेश मुझ में,
चिदानन्द रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

* सीहरफी बुल्हाशाह *

[१]

अलफ़—आपणे आपनूं समझ पहले, की वस्तु है तेरड़ा रूप प्यारे ।
बाझ आपणे आपदे सही कीते, प्यों विचविसूरे दे दुःख भारे ।
होर लख उपाव न सुख होवी, पुच्छ वेख स्यानड़े जग सारे ।
सुख रूप अखण्ड चैतन्य हैं तूं, बुल्हाशाह पुकारदे वेद चारे ॥

अद्वैत-मुक्तावली

स्वमेवादौ परीक्षेथा वस्तुरूपं तवास्ति किम् ।
विनैवात्मविवेकेन भूरिदुःखार्णवेऽपतः ॥१॥

लक्षकोटिशतैरन्यैरुपायैर्न भवेत्सुखम् ।
संदिहानोऽसिचेदत्र पृष्ट्वा जानीहि कोविदान् ॥२॥

अखण्डानन्दचैतन्यस्वरूपोऽस्यविकल्पितः ।
कथयन्ति तथा ह्येते वेदवादाः समन्ततः ॥३॥

श्लोकार्थः—पहले तुम अपने आपको जानो कि तुम्हारा वास्तव स्वरूप क्या है, क्योंकि आत्मविवेक के विना ही महान् दुःख के समुद्र में तुम पड़े हो ॥१॥

आत्मज्ञान के विना लाखों करोड़ों अन्य उपायों के द्वारा सुख नहीं हो सकता। यदि इस में सन्देह हो तो विद्वानों से पूछ कर जान सकते हो ॥२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम अखण्डानन्द निर्विकल्प चैतन्य स्वरूप हो, क्योंकि वेद के अनेक वाक्य ऐसा ही कहते हैं ॥३॥

[२]

बै—बन्नह अखीं अते कन्न दोवें, गोशे बैठ के बात विचारिये जी ।
छड खाहिशां जान जहान कूड़ा, कह्या आरफां दा हिये धारिये जी ।
पैरीं पा ज़ञ्जीर बेखाहिशीदे, इस नफ़स नूं कैद कर डारिये जी ।
जाणजाणदी नूं जान रूप तेरा, बुल्हाशाह इयों खुशी गुज़ारिये जी ॥

नेत्रश्रोत्रं निरुध्यादावेकान्ते स्वं विचारयेः ।
उज्झ कामान् जगत्कूटं विद्धि वाचं विदां वह ॥४॥

नैराश्यनिगडं दत्त्वा पादयोरतिदुर्वहम् ।
पिशाचप्रायमेवैतन्निगृहाण मनोदृढम् ॥५॥

ज्ञातुर्ज्ञातारमन्तःस्थमात्मानं स्वं विदांकुरु ।
साक्षिणं स्वं विदित्वैवं मोदेनानेहसं नयेः ॥६॥

श्लोकार्थः—पहले नेत्र, श्रोत्रादि इन्द्रियों का निरोध करके एकान्त में बैठकर स्वस्वरूप का विचार करो। कामनाओं का त्याग करो। जगत् को मिथ्या निश्चय करो। विद्वानों की इस वाणी को हृदय में धारण करो ॥४॥

पाओं में निःस्पृहता की बेड़ी लगाकर पिशाच के समान इस मन का दृढ़ता से निरोध करो ॥५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञाता के जाननेवाले को अपना स्वरूप निश्चय करो। इस प्रकार अपने आप को साक्षी स्वरूप समझ कर आनन्द पूर्वक काल यापन करो ॥६॥

[३]

ते—तनक छिद्र नहीं विच तेरे, जित्थे कख न इक समांवदा ए।
ढूंड वेख जहान दी ठौर कित्थे, अनहोंदड़ा नजरी एह आंवदा ए।
जिवें खाबदा ख्याल होवे सुत्त्यांनू' तरह तरह दे रूप विखांवदा ए।
बुल्हाशाह न तुझ थीं कुझ बाहिर, तेरा भरम तैंनू' भरमांवदा ए॥

त्वयि नैव मनाग्रन्ध्रं तृणं यत्र समाविशेत्।
कथं तत्र जगज्जालमजातं भासते ततः ॥७॥

यथा स्वप्ने मनः स्वस्मिन् दर्शयेद्विविधाकृतीः।
न तथा त्वज्जगद्बाह्यं भ्रमेणास्यन्यथा कृतः ॥८॥

श्लोकार्थः—तुम्हारे स्वरूप में ऐसा छोटा-सा भी छिद्र नहीं, जिसमें एक तृण भी प्रवेश कर सके। ऐसे तुम चिद्घन में जगज्जाल किस तरह प्रवेश कर सकता है? इसलिये यह जगत् अविद्यमान ही भान हो रहा है ॥७॥

जिस प्रकार स्वप्न में मन अपने अन्दर अनेक आकारों को दिखाता है, वह मन से बाहिर कुछ नहीं है, इसी प्रकार यह जाग्रत जगत् भी तुमसे बाहिर नहीं है, भ्रान्ति से तुमको अन्यथा भान हो रहा है ॥८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[४]

तीन से—समझ हिसाबकर बैठ अन्दर, तूं ते आसरा कुल जहान दा ए ।
तेरे डिठयाँ दिसदा सभकोई, नहीं कोई न किसे पछाणदा ए ।
तेरा ख्याल ही होया हरतरह दिस्से, जिवेंबाल वैतालकर जाणदा ए ।
बुल्हाशाह फाहे कौण डावरे नूं, फस्से आप आपे फाही ताणदा ए ॥

ततः सम्यग्विचार्यान्तस्तिष्ठासि जगदाश्रयः ।
त्वयि भाति जगद्भाति कोऽन्यथा कं विभावयेत् ॥९॥

मनसोपहितस्त्वं हि भाससे बहुधा भवन् ।
बेताल इव बालेन कल्पितस्तमसाऽप्यसन् ॥१०॥

कोऽन्यः पाशयते लूताजन्तुं किन्तु स्वयं हि सः ।
तन्तुभिः स्वैरिहात्मानं वेष्टयित्वा विपादयेत् ॥११॥

श्लोकार्थः—इसलिये सम्यक् विचार करके अपने स्वरूप में स्थित हो । तुम ही जगदाश्रय हो । तुम्हारे प्रकाश से सारा जगत् भान हो रहा है, नहीं तो कौन किसको देख सकता है ॥९॥

मन की उपाधि से तुम ही अनेक रूप जगदाकार से भान हो रहे हो । जैसे अन्धकार में असद्रूप वैताल बालक को भान होता है ॥१०॥

जैसे लूताकीट को कोई दूसरा नहीं फंसाता । वह स्वयं ही अपने तन्तुओं द्वारा अपने आपको वेष्टित करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नष्ट करता है, (उसी प्रकार तुम भी अपनी अन्यथा कल्पनाओं के द्वारा अपना नाश करते हो) ॥११॥

[५]

जीम–जीवणा भलाकर मन्या तैं, डरें मरण थीं एहो अरमान भारा।
इकतूं हीताँ जिंद जहान दीएं, मिल्या जिवें आकाश सब माहिं न्यारा।
तेरे जेहा न दूसरा होर कोई, आद अन्त वाझों सदा लगें प्यारा।
बुल्हाशाह संभाल न काल कोई, तूं ताँ अमर हैं सदा नहीं मरणहारा॥

जीवनं मन्यसे श्रेयो विभेषि मरणाद्भृशम्।
शोच्यमेतद्यतस्तात जीवातुरसि जागतः ॥१२॥

आकाश इव सर्वेण सङ्गतः प्रतिभानपि।
सर्वज्ञासङ्ग एवासि किं मुधा परिमुह्यसि ॥१३॥

त्वया तुल्यो न लोकेऽस्मिन्ननादिनिधनोऽपरः।
परप्रेमास्पदीभूतस्त्वमेव जगतामसि ॥१४॥

निर्णयस्व समालोच्य कालस्ते नास्ति कश्चन।
कालस्य काल एव त्वममरो न मरिष्यसि ॥१५॥

श्लोकार्थ–तुम जीने को सदा अच्छा जानते हो और मरण से अत्यन्त डरते हो, यह एक अतिशोचनीय है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् का जीवन तुम ही हो ॥१२॥

आकाश की न्याईं व्यापक होने के कारण सबसे मिले हुए होने पर भी तुम सर्वथा असङ्ग ही हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी इस असङ्गता को न जान कर ही केवल मिथ्या मोह में पड़े हो ॥१३॥

इस लोक में तुम्हारे जैसा आदि-अन्त से रहित कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। सम्पूर्ण जगत् के परमप्रेमास्पद तुम ही हो ॥१४॥

तुम सम्यक् विचार करके निर्णय करो कि तुम्हारा कोई काल नहीं है अर्थात् तुमको मारने वाला कोई नहीं है। तुम काल के भी काल हो। तुम अमर हो; कभी मरोगे नहीं ॥१५॥

[६]

हे—हिरस हैरान कर सुट्टयों तूं, तैंनूं अपणा आप भुलाया सू।
पातशाहियों सुट कंगाल कीतों, कर लख थीं कख दिखाया सू।
मदमत्तड़े शेर नूं तन्द कच्ची, पैरी पाके वन्नह बहाया सू।
बुल्हाशाह तमाशड़ा होर वेखो, लै समुन्द नूं कूजड़ी पाया सू॥

विषयाशा पिशाच्या त्वं कदर्थी कृत्य वेगतः।
क्षिप्तः सुदूरमापत्था विस्मृतिं परमात्मनः ॥१६॥
चक्रवर्तिपदान्नूनं प्रच्याव्याऽकिञ्चनीकृतः।
लक्षकोटिपतिप्रख्यस्तृणतुल्यस्तथाऽभवः ॥१७॥
मदमत्तस्तथा सिंहोऽप्यपक्वेनैवतन्तुना।
वद्ध्वाऽसि पादयोः स्थूणामूल एवोपवेशितः ॥१८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पश्यताश्चर्यमेवैतदन्यद्वै कौतुकं महत् ।
सागरः सरितां पाता घटिकायां भृतोऽभवत् ॥१९॥

श्लोकार्थः—विषयाशा की पिशाची ने तुमको पीड़ित करके संसार समुद्र में दूर फैंक दिया है, जिससे तुम परमात्मा को सर्वथा भूल गये हो ॥१६॥

और इसी विषयाशा पिशाची ने चक्रवर्ति पद से गिरा कर तुमको दरिद्र कर दिया है, जिससे कि तुम करोड़पति के तुल्य होते हुए भी एक तृण के समान हो गये हो ॥१७॥

इसी दुराशा से, मदोन्मत्त सिंह के सदृश बलवान होते हुये भी, तुम एक कच्चे धागे के द्वारा पाओं में बांध कर खम्भे के साथ बिठा दिये गये हो ॥१८॥

और दूसरा यह एक बड़ा आश्चर्य देखो कि सम्पूर्ण नदियों का अपने में समावेश करने वाला समुद्र एक छोटे से कूजे (घड़िया) में भर दिया गया है ॥१९॥

[७]

खे—खबर न आपणी रखना हैं, लग ख्याल दे नाल तूं ख्याल होया ।
जरा ख्याल नूं छोड़ वेख्याल हो खाँ, जिवें होवे अधजाग्या नहीं सोया ।
तदों वेख खाँ अन्दरो कौण वेखे, नहीं घास में छुप हाथी खलोया ।
बुल्हाशाह ज्यों गले दे विच गहणा; फिरें ढूंडदा ताहिं तैं नहीं खोया ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनसाऽसि मनी भूतो विस्मृत्यात्मानमेव भोः ।
विहाय मनसा सङ्गं निःसङ्कल्पो भव क्षणम् ॥२०॥
अर्धसुप्तसमो भूत्वा पश्यान्तः को विलोकते ।
नहिं गुल्मगतो हस्ती गुल्मावृत्या न वीक्ष्यते ॥२१॥
यथा कण्ठगतं कश्चिद्भूषणं भ्रमतोऽस्मरन् ।
अन्यतो मृग्येतैवं नैव त्वं विगतोऽभवः ॥२२॥

श्लोकार्थः—मन की उपाधि से आत्मा को भूल कर तुम मनरूप ही हो गये हो, इसलिए मन का सङ्ग छोड़कर क्षणमात्र ही निःसंकल्प हो जाओ ॥२०॥

आधे सोये हुए के समान निःसंकल्प होकर देखो कि अन्दर कौन देख रहा है? घास में खड़ा हुआ हाथी न दीख सके, ऐसी बात नहीं हो सकती ॥२१॥

जिस तरह कण्ठ में होते हुए भूषण को भ्रान्ति से भूलकर दूसरी जगह पुरुष ढूंढता है, वस्तुतः वह कहीं गया नहीं। इसी प्रकार ब्रह्म स्वरूप तुम्हारा आत्मा कहीं खोया नहीं, वह तुम ही हो ॥२२॥

[८]

चे—चानणा कुल जहान दा तूं, तेरे आसरे होये विवहार सारा ।
होये सभन की अखमें देखदा हैं, तुझे सूझदा चानणा अन्ध्यारा ।
नित सोवणा जागना खाव तीनों, देख तेरे आगे होये कई वारा ।
बुल्हाशाह प्रकाश स्वरूप तेरा, घट वध नहीं होत है इक सारा ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्वमेव जगतां ज्योत्स्ना चेष्टा सर्वाऽप्यधित्वयि ।
सर्वचक्षुर्गतो द्रष्टा पश्यस्याभां तथा तमः ॥२३॥
नित्यं सुप्तिश्च जागर्या स्वप्नश्चेति दशा इमाः ।
पश्योत्पद्य विलीयन्ते कियद्वारान् पुरस्तव ॥२४॥
भासयंस्ता दशास्तिस्रो नित्यं चैतन्य तेजसा ।
नो ह्रसेन्नापि वर्धेत सर्वदैकरसो भवान् ॥२५॥

श्लोकार्थः—तुम ही जगत् के प्रकाशक हो। देहादि की सर्व चेष्टायें तुम्हारे ही अधीन हैं और सर्व चक्षुओं में बैठ कर प्रकाश और अन्धकार को देखने वाले तुम ही हो ॥२३॥

और देखो कि जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, यह तीनों अवस्थायें तेरे सामने कई वार उत्पन्न होकर विलीन हो जाती हैं ॥२४॥

इन तीनों दशाओं को सर्वदा चैतन्य तेज के द्वारा प्रकाशित करते हुए तुम घटते-बढ़ते नहीं हो, इस वास्ते सर्वदा एक रस हो ॥२५॥

[६]

काल—दिल दिलगीर न होये मूले, दिगर चीज़ नापैद तहकीक कीजे ।
अव्वल जाय सोहबत करो आरफाँदी, सुखन तिनांदे आबहयात पीजे ।
चशम जिगरदे मलिन होरहे तेरे, नहीं सूझदा तिनो कर साफ़ लीजे ।
बुल्हाशाह सम्भाल तूं आप ताईं, तूंही एक आनन्दमय सदा जीजे ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न कदाऽपि मनः शोके कुर्या एव कथञ्चन ।
द्वितीयं न यतो जातं त्वत्तो भिन्नं मनागपि ॥२६॥

श्रोत्रियान्ब्रह्मनिष्ठांश्च गत्वा तावद्यथा विधि ।
शुश्रूषमाण एवैषामुपदेशामृतं पिबेः ॥२७॥

मलिना सौम्य ते दृष्टिरान्तरीति न लोकसे ।
मृड्ढितां साधनैर्दिव्यैस्ततोऽन्तः संनिभालयेः ॥२८॥

जेजीयसे सदानन्दमयो निःसंशयो भव ।

श्लोकार्थः—कभी किसी प्रकार शोक में मन मत लगाओ, क्योंकि तुम से भिन्न दूसरा कोई कभी अणु-मात्र भी उत्पन्न नहीं हुआ ॥२६॥

और इसको समझने के लिए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं के समीप यथाविधि जाकर, उनकी सेवा करते हुए, उनके उपदेशामृत का पान करो ॥२७॥

हे सौम्य ! तुम्हारी आन्तरिक दृष्टि मलिन होने के कारण तुम आत्मा का दर्शन नहीं कर रहे हो । दैवी-सम्पत्ति रूप दिव्य साधनों के द्वारा अपनी अन्तर्दृष्टि का मार्जन करो, तब अन्दर देखोगे—॥२८॥

कि तुम ही सदा आनन्दमय विराजमान हुए विजय को प्राप्त हो रहे हो । तुम इसमें निःसंशय होवो ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१०]

ज़ाल—ज़रा भी शक्क न रख मन ते, तूंही होहु वेशक खुद खसम साइं ।
जिवें सिंह भुलाये बल आपणे नूं, चरे घास मिल अजांमें अजा न्याइं ।
पिच्छे समझ बल गर्ज्यो अजामारी, भयोसिंहको सिंह कुछ भेद नाहीं ।
तैसे तूंही तरह कुछ औरधारी, बुल्हाशाह सम्भाल तूं आप ताइं ॥

अनन्याधिपतिस्तात सर्वेशोऽसि न संशयः ॥२९॥

यथा सिंहशिशुः कश्चिद्विस्मृत्यात्मबलं वने ।
मिलित्वा वर्करैःसार्धं घासमद्यादजा इव ॥३०॥

कथंचित्स बलं बुद्‌ध्वा नैजं गर्जन्नजव्रजम् ।
मारयित्वा भवेत्सिंहः सिंह एव पुरापि सन् ॥३१॥

तथात्वयापि विस्मृत्य स्वात्माऽनात्म समागमात् ।
अन्यथाऽधिगतो नूनमद्य तं संनिभालय ॥३२॥

श्लोकार्थः—हे तात ! जिसका दूसरा कोई अधिपति नहीं, ऐसे सर्वेश्वर तुम ही हो। इसमें संशय नहीं ॥२९॥

वन में जैसे कोई सिंहशिशु अपने बल को भूलकर बकरियों के साथ मिलकर बकरी की न्याईं घास खाता है ॥३०॥

फिर वह किसी प्रकार अपने बल को जानकर गर्जन करता हुआ बकरी के समूह को मारकर पहले सिंह होता हुआ सिंह रूप हो जाता है ॥३१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी प्रकार तुमने भी अनात्म सम्बन्ध से आत्मा को भूलकर अन्यथा रूप से आत्मा को जाना था। अब तुम अपने आपको देखो ॥३२॥

[११]

रे—रंग जहान दे देख प्यारे, सोहणे वाझ विचारयाँ दिसदे नी।
जिवें होत हुवाब बहुं रंग देजी, अन्दर आवदे जरा विच फिसदे नी।
खाक आब आतिश वादभये इकट्ठे, देख अज कि कल विचखिसदे नी।
बुल्हाशाह सम्भाल के देख खां तूँ, दुखसुख सभे एह किसदे नी॥

पश्य प्रेष्ठ जगज्जालोद्भवा भावा अमी समे।
शोभना एव दृश्यन्ते विचारेण विना खलु ॥३३॥
यथाऽधिजलमुद्भूय बहु रूपा हि बुद्बुदा।
क्षणमात्रमवस्थाय प्रस्फुटन्ति समन्ततः ॥३४॥
एवमेतानि भूतानि पृथिव्यादीनि पञ्च वै।
संभूय सञ्चरन्त्यद्य श्वो वा यास्यन्ति पातनम् ॥३५॥
ततस्त्वं दीर्घमालोच्य धिया धीर निभालय।
सुख दुःखादयो धर्माः सन्ति कस्येह धर्मिणः ॥३६॥

श्लोकार्थः—हे सौम्य! देखो कि जगज्जाल में उत्पन्न हुए यह सब पदार्थ विचार के विना ही सुन्दर दिखाई देते हैं ॥३३॥

ज़िस प्रकार जल में उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के बुद्बुदे क्षणमात्र रहकर सबके सब फूट जाते हैं ॥३४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी प्रकार पृथिवी आदि पञ्च महाभूत शरीराकार होकर घूमते फिरते हैं। वह आज या कल गिर जायेंगे ॥३५॥

इसलिए, हे धीर ! तुम बुद्धि के द्वारा दीर्घ विचार करके देखो कि सुख-दुःखादि धर्म किस धर्मी के हैं ॥३६॥

[१२]

जे-जावणा आवणा नहीं ओथे, कोहां वांग हमेश अडोल है जी।
जिवें बदलां दे चले चन्न चलदा, लगे बालकांनूं एहीभोल है जी।
चलें देह इन्द्रिय मन प्राणादिक, ओह वेखणेहार अडोल है जी।
बुल्हाशाह सम्भाल खुशहाल हूजे, ऐन आरिफ़ाँ दा इहो बोल है जी ॥

न गतिर्नागतिस्तत्राऽचलः स इव पर्वतः ।
बलाहकगतिं चन्द्रे कल्पयन्त्येव बालिशाः ॥३७॥
देहेन्द्रियमनः प्राणा व्याप्रियन्ते क्षणे-क्षणे ।
चक्षणस्तु तदीयोऽसावहलो न चलेन्मनागपि ॥३८॥
एवं कूटस्थमात्मानमवधार्य विचारतः ।
निमज्जाऽऽनन्दसंदोह इति वादो विदामयम ॥३९॥

श्लोकार्थः—उस आत्मा में गति-आगति कुछ नहीं है। पर्वत की न्याई वह अचल है, परन्तु बादल की गति को मूर्ख लोग चन्द्रमा में आरोपित करते हैं ॥३७।

इसी प्रकार देह, इन्द्रिय, मन और प्राणादि प्रतिक्षण व्यापार करते हैं, किन्तु इनका साक्षी यह आत्मा कभी चलायमान नहीं हुआ है ॥३८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार आत्मा को विचार से कूटस्थ निश्चय करके आनन्द के समुद्र में निमग्न हो जाओ। यही वेदवेत्ताओं का कथन है ॥३९॥

[१३]

सीन–सितम करना जान आपणी ते, भुल्ल आपथीं होरकुछ होवणा ई।
जिवें लिख्या शेर चितेरेयां ने, सच्च जाण के बालकां रोवणा ई।
ज़रा मैल नाहीं देख भुलना ऐं, लगेचिकड़ों बाझ क्या धोवणा ई।
बुल्हाशाह जञ्जाल न मूल कोई, जाणबुझ के क्यूं बाजी खोवणा ई॥

इदमेव महत्पापमात्मन्याचर्यतेऽबुधैः ।
यदपह्नूय तत्तत्त्वमन्यथात्व विभावनम् ॥४०॥
चित्रकारैर्यथा सिंहो भित्तिभागेऽवलेखितः ।
तथात्वेन परिज्ञातो रोदयत्येव बालकान् ॥४१॥
न मनाङ् मलसम्पर्कौ प्रतीच्यत्र पराक्कृतौ ।
तद्धीरत्र भवेद्भ्रान्ता नभसीव मलीमसा ॥४२॥
तन्निरासपरोद्योगो निष्पङ्कक्षालनोपमः ।
समूल जगतोऽभावे स्वस्मिन्कस्मात्पराभवेः ॥४३॥

श्लोकार्थः—अज्ञानी लोग आत्मा के विषय में महान् अपराध करते हैं कि उसके यथार्थ स्वरूप को न जानकर अन्यथा दर्शन करते हैं अर्थात् अपने ब्रह्मभाव को भूलकर जीव भाव को देखते हैं ॥४०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे अनिष्ट होने में दृष्टान्त कहते हैं कि दीवार पर चित्रकारों द्वारा लिखा हुआ सिंह, सच्चे सिंह के रूप से जाना हुआ बालकों को भयभीत करता है (इसी प्रकार अन्यथा जाना हुआ आत्मा भय, दुःखादि का कारण बनता है) ॥४१॥

वस्तुतः प्रत्यगात्मा में बाह्य पदार्थों का मल अथवा सम्बन्ध लेशमात्र भी नहीं है। इस वास्ते उनकी प्रतीति आकाश में मलिनता की न्याईं भ्रान्ति मात्र है ॥४२॥

इसलिए, उनकी निवृत्ति का उद्योग कीचड़ रहित हस्त-पाद आदि को धोने के तुल्य है। अतः अपने में मूल सहित जगत् का अभाव निश्चय होने पर क्यों दीन होना ॥४३॥

[१४]

शीन—शुबह नाहीं ज़रा इक इस में, सदा आपणा आप स्वरूप है जी।
नहीं ज्ञान-अज्ञान दी ठौर उत्थे, कहां सूर में छाऊं अरु धूप है जी।
पड़ा सेज के माहिंही सही सोया, कूड़ स्वप्न का रङ्ग अरु रूप है जी।
बुल्हाशाह सम्भाल जब मूल देखा, ठौर ठौर में वही अनूप है जी॥

नात्र संशयलेशोऽपि ब्रह्मैवात्माऽस्ति देहिनाम्।
ज्ञानाज्ञाने न तत्र स्तः सूर्ये छायाऽऽतपो कुतः ॥४४॥
साक्षी शय्यास्थएवायं मिथ्या स्वप्नावलोकनः।
संनिभाल्य यदा दृष्टं स्थाने स्थाने स एव हि ॥४५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकार्थः—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है कि सब देहियों का आत्मा वस्तुतः ब्रह्म ही है। और उस में ज्ञान अज्ञान दोनों नहीं हैं। जिस तरह सूर्य में छाया और धूप नहीं हैं ॥४४॥

यह साक्षी स्वरूप आत्मा सदैव स्वरूपावस्थित होकर ही जगत् रूप मिथ्या स्वप्न को देखता है। जब विचार करके देखा तो सर्वत्र उसकी सत्ता अवगत होती है ॥४५॥

[१५]

स्वाद—सबर करना आईवनी उत्ते, देख रङ्ग न चित्त डोलाइये जी
जोई आये और जाये करटिके नाहीं, तामें कौणदानिश चित्त लाइये जी
सदा तुखम दी तरफ निगाह करनी, पात फूल फल और न जाइये जी
बुल्हाशाह सम्भाल खुद खंड चाखा, तिस वेख खल खुश्क क्यूं खाइये जी

यदृच्छोपनते नित्यं सन्तोष्टव्यं शुभाशुभे।
चाकचक्यं तु भावेषु दृष्ट्वा चित्तं न दोलयेत् ॥४६॥
आगमापायिनो भावा अध्रुवा येऽभिवीक्षिताः।
तत्र चित्तसमासङ्गः का हि सा प्रज्ञता भवेत् ॥४७॥
यज्जगज्जीर्णवृक्षस्य मूलमस्त्यविनश्वरम्।
निभालयेत्तदेवैकमुज्झित्वा पल्लवादिकम् ॥४८॥
को हि नाम बुधो लोके खाद्यमास्वाद्य खण्डजम्।
निःस्नेहमपि पिण्याकं भक्षयेत निजेच्छया ॥४९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकार्थः—दैवगति से उपस्थित शुभाशुभ में नित्य ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। पदार्थों की चमक को देख कर चित्त को विचलित नहीं करना चाहिये ।।४६।।

जो पदार्थ आगमापायी अर्थात् अनित्य निश्चय किये गये हैं, उनमें चित्त की आसक्ति करना क्या बुद्धिमत्ता है ।।४७।।

जगत् रूप जीर्ण वृक्ष का जो अविनाशी मूल ब्रह्म है उस वृक्ष के पत्र पुष्प आदि को छोड़कर केवल उस मूल का ही दर्शन करना अर्थात् सर्व जगत में ब्रह्म दर्शन करना ही उचित है ।।४८।।

लोक में कौन बुद्धिमान पुरुष मिठाई का आस्वादन लेकर शुष्क खल को स्वेच्छा पूर्वक भक्षण करेगा ।।४९।।

[१६]

ज्वाद–ज़िकर ते फिकर सब त्याग कीजे, कीजे नहीं कुछ एही पहचानणा है
जांसे उठ्या तिसी के बीच डालो, होये अडोल देखो आप चानणा है।
दिगर चीज़ नापैद तहकीक कीजे, एही एही कर जीव में आनणा है।
बुल्हाशाह सम्भाल तूं आप ताईं सदा एक अखण्ड कर मानणा है ।।

अनात्मोदन्त जालानि चिन्ताश्चानात्मगोचराः।
त्यक्त्वा किञ्चिन्न कुर्वेऽहमित्येवं परिभावयेत् ।।५०।।

विलाप्यास्तदुपादाने चिन्तावृत्तान्तवृत्तयः।
अचलीभूय वीक्षायां स्वयमात्मा प्रकाशते ।।५१।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वैतं कदापि नोत्पन्नमिति सत्यं विचारयेत् ।
विचार्य सुचिरं चैतद्धृदि निश्चयमानयेत् ॥५२॥
अहमेव परं ब्रह्मेत्यात्मानं ब्रह्मतां नयेत् ।
महतैवं विचारेण विज्ञायत्मानमञ्जसा ।
सर्वदैकमखण्डं च मन्वीत कुशलोजनः ॥५३॥

श्लोकार्थः—आत्मकल्याण में कुशल पुरुष को चाहिये कि अनात्म चरचाओं को तथा अनात्म विषयक चिन्ताओं को सर्वथा त्याग करके "मैं कुछ भी नहीं करता" ऐसी भावना करे ॥५०॥

तथा इन अनात्मचरचा और चिन्ताओं को अधिष्ठान-भूत आत्मा में विलापन करके और अचल होकर देखे, तो स्वयंप्रकाश आत्मा स्वतः भान होगा ॥५१॥

यह द्वैत प्रपञ्च कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ है इस सत्य सिद्धान्त को विचार करे। और इस सिद्धान्त को चिरकाल विचार करके हृदय में निश्चय करे ॥५२॥

और "मैं ही परम्ब्रह्म हूँ" इस प्रकार दृढ़ भावना के द्वारा आत्मा में ब्रह्म भाव को प्राप्त करे इस प्रकार दीर्घ विचार के द्वारा आत्मा का साक्षात्कार करके आत्मा को सदा एक अद्वितीय अखण्ड रूप निश्चय करे ॥५३॥

[१७]

तोये—चौर महबूब दा जिन्हां डिट्ठां, तिनां दूई तरफों मुख मोड़ियाई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोई लटक प्यारे दी लुट लीती, हटे नाहीं ऐसा जीव जोड़ियाई।
अट्ठे पहर दीवान मस्तान फिरदे, उन्हां पैर आलूद न बोड़ियाई।
बुल्हाशाह ओह आप महबूब फिरदे, इशक यार दे कुफ़र सब तोड़ियाई।

यैः प्रेष्ठं तन्महद्भूतमेकवारमवेक्षितम्।
ततः प्रभृति ते नूनमासन्नन्यपराङ्मुखाः ॥५४॥
आनन्दलवमाल्लुन्ट्य परप्रेष्ठस्य कञ्चन।
अपुनर्विप्रयोगाय योजयन्ति स्म ते मनः ॥५५॥
अहर्निशममी प्रेष्ठमीक्षमाणाः समन्ततः।
जडोन्मत्त समाः सन्तो विचरन्त्यकुतोभयाः ॥५६॥
नैवमप्येकमात्रं तैरपथे पदमर्पितम्।
स्वयमेव महद्भूतमापन्नाः पर्यटन्तकि ॥५७॥
प्रणयेन परेणैभिः प्रेमसो निघ्नितैरलम्।
प्रत्यूहजननी सर्वा वागुरा शकलीकृता ॥५८॥

श्लोकार्थः—जो महानुभाव इस परप्रेमास्पद ब्रह्म को एक बार भी साक्षात्कार करते हैं, वह उसके पश्चात् अवश्य ही प्रपञ्च से पराङ् मुख हो जाते हैं ॥५४॥

इस परप्रेमास्पद के आनन्द की लेश को लूट कर अर्थात् अनुभव करके पुनः वियोग न हो इस प्रकार मन को उसी में जोड़ देते हैं ॥५५॥

और वह ब्रह्मज्ञानी सर्वदा उस परप्रेमास्पद ब्रह्म को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वत्र देखते हुये जड़ और उन्मत्त के समान होते हुये निर्भय होकर विचरते हैं ॥५६॥

परन्तु कभी भूल कर भी कुमार्ग में पदार्पण नहीं करते। और स्वयं ही परब्रह्म भाव को प्राप्त होकर पर्यटन करते रहते हैं ॥५७॥

परप्रेमास्पद ब्रह्म के प्रेम के अधीन वह महापुरुष विघ्नोत्पादक समस्त वासनाजालों को छिन्नभिन्न कर डालते हैं ॥५८॥

[१८]

जोये—जुदा नाहीं तेरा यार तैथों फिरें ढुंडदा किसनूं दस्स मैंनूं।
पहले ढुंडनेहार नूं ढुंड खां तूं घरे विच परतख जो रस तैंनूं।
मतां तूं ही होवें आप यार सवदा फिरे ढूंडदा जंगलां विच जैंनूं।
बुल्हाशाह तूं आप महवूब होया भुल्ला आपनूं ढूंडदा फिरे कैंनूं॥

त्वद्भिन्नो न तव प्रेयान् कं गवेषयसे वद।
अन्वेषयस्व तं तावद्यो विमार्गयते प्रियम् ॥५९॥
अयमेव परप्रेमपात्रीभूतो रसो गृहे ॥६०॥
कदाचिदिह सर्वेषां परप्रेमास्पदं भवेः।
यन्निमार्गयमाणोऽत्र गहनानि विगाहसे ॥६१॥
त्वमेव तन्महदभूतमसि प्रेष्ठं परावरम्।
विस्मरन्नात्मभूतं तत् कं गवेषयसे मुधा ॥६२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकार्थः—परप्रेमास्पद ब्रह्म तुम से भिन्न नहीं है । तुम किस को खोजते हो ? परप्रेमास्पद के खोजने वाले को ही खोजो अर्थात् अपने आपको ही विचारो, परप्रेमास्पद रस-रूप आत्मा अपना आप ही है ।।५९।।६०।।

जिसको खोजते हुये गहन बनों में तुम भटक रहे हो । वह सर्व का परप्रेमास्पद आत्मा सम्भवतः तुम ही हो सकते हो ।।६१।।

वह परावर परप्रेमास्पद ब्रह्म तुम ही हो ! आत्मस्वरूप इस ब्रह्म को भूल कर व्यर्थ ही किसको खोज रहे हो ? ।।६२।।

[१६]

ऐन ऐन ही आप है बिना नुक्ते सदा चैन महबूब दिलदार मेरा ।
इकवार महबूब नूं जिन्हां डिठ्ठा ओह वेखणेहार है सब केरा ।।
उसतों लख बहिश्त कुरबान कीते पहुँचे महल बेग़म चुकाये झेड़ा ।
बुल्हाशाह ओह हाल मस्तान फिरदे हाथीमत्तड़े तोड़ ज़ञ्जीर जेहड़ा ।।

स्वयमेव परः शुद्धो नामरूपविवर्जितः ।
सदानन्दमयः प्रेयाञ् चित्तचेतयता मम ।।६३।।

सकृदेवापि येनायमहो प्रेयानवेक्षितः ।
द्रष्टा स एव सर्वस्य दर्शनीयश्च जायते ।।६४।।

अमीषामुपरिष्टान्मे लक्षं स्वर्गा निरासितः ।
येऽबदीयं जगज्जालं पदं शोकान्तरं गताः ।।६५।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्मीय मदमत्तास्ते विचरन्ति यथासुखम् ।
त्रोटयित्वा बलेनैव शृङ्खलानीव वारणाः ॥६६॥

श्लोकार्थः—स्वयं आत्मा ही परम शुद्ध स्वरूप तथा नामरूप से विवर्जित सदा आनन्दमय, परप्रेमास्पद और सर्व के चित्त का साक्षी है ॥३३॥

और यह परप्रेमास्पदात्मा जिस महापुरुष ने एक बार भी देख लिया, वही सर्वका द्रष्टा तथा सर्व के दर्शन योग्य होता है ॥६४॥

जो महापुरुष जगज्जाल को विदीर्ण करके शोक मोह रहित परमपद को प्राप्त हो गये, उनके ऊपर मैं लाखों स्वर्गों को न्योछावर करता हूं अर्थात् उस परब्रह्म के सामने लाखों स्वर्गों का कोई महत्त्व नहीं ॥६५॥

वह महापुरुष आत्मानन्द में मग्न हुये सुख पूर्वक विचरते हैं। जिस प्रकार अपने बल से जञ्जीरों को तोड़ कर मदोन्मत्त हस्ती स्वतन्त्र विचरते हैं ॥६६॥

[२०]

सैन—ग़म ने मार हैरान कीती, अट्ठें पहर प्यारे नूं लोड़दी सां।
मैंनूं खावणा पीवणा भुल्ल गया, रब्बा मेल जानी हत्थ जोड़दी सां।
सय्यां छड गय्यां मैं इकलड़ी नूं, अङ्ग साक नालों नाता तोड़दी सां।
बुल्हाशाह जब आपनूं सही कीता, तदों सुत्तड़ी अङ्ग न भोड़दी सां।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहो आविद्यशोकेन महताऽहं कदर्थिता ।
अपेक्षेऽहमहोरात्रं प्रेयांसमतिविह्वला ॥६७॥
व्यस्मरं भोज्यपेयानि प्रियेहीत्येवमार्तथे ।
विहायैकाकिनीमेतां सख्यो मां क्वाप्ययासिषुः ॥६८॥
देहतत्सङ्गिभिः सार्धं सम्बन्धमहमच्छिदम् ॥६९॥
यदा चैवेममात्मानं निरणैषि प्रियं मम ।
तदा सुप्तवती शान्ता नैकमप्यङ्गमैङ्गयम् ॥७०॥

श्लोकार्थः—वृत्ति कहती है कि महान् आविद्यक शोक के द्वारा मैं अत्यन्त पीड़ित हुई परप्रेमास्पद अपने आत्मा को अति विह्वल होकर दिनरात उसकी प्राप्ति की इच्छा करती थी ॥६७॥ मैं खाना पीना भूल गई 'हे प्रिय आओ' इस प्रकार प्रार्थना करती थी। दूसरी अनात्म वृत्ति रूप सखियां मुझ को अकेली छोड़ कर कहीं चली गईं ॥६८॥

मैंने देह और इसके सम्बन्धियों के साथ अपना सम्बन्ध विच्छेद कर दिया है ॥६९॥

इस परम प्रिय आत्मा का निर्णय जब मैंने कर लिया तब शान्त होकर सुषुप्त की न्याईं हो गई और अब किसी अङ्ग को भी हिलाना नहीं चाहती ॥७०॥

[२१]

फ़े—फ़िकर गया सय्यो मेरियोनी मैंतों आपणे आपनूं सही कीता ।
फूड़ी देहदा नेह चुकायियाई धूड़ी छाए के लाल नूं कढ लीता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देख धूयें दे धौलरे जग सारा मुट्ट घत्याजी ते हार जीता।
बुल्हाशाह आनन्द अखण्ड साचा जाए आपनूं आबहयात पीता।

चिन्ता विकृतयः सर्वाः सख्यो मे व्यगमन्निमाः।
मयात्मैव विनिर्णीतः परप्रेमास्पदं पतिः ॥७१॥

मिथ्यादेहमहास्नेहो नितरामवसायितः।
शोधयित्वा रजः पुञ्जं मणिर्निष्कासितो मया ॥७२॥

धूमपूगमयागार प्रायमेवाखिलं जगत्।
दृष्ट्वा सुदूरतः क्षिप्तौ हृदयात्तु जयाजयौ ॥७३॥

अखण्डं सच्चिदानन्दं ज्ञात्वैवात्मानमञ्जसा।
पीयूषमिव संपीतमजरामरणाऽभवम् ॥७४॥

श्लोकार्थः—मेरे चिन्ता फ़िकर सब दूर हो गये। और मैंने परप्रेमास्पद आत्मा को ही अपना अधिष्ठाता निर्णय किया है ॥७१॥

इस मिथ्या देह का महान् स्नेह समाप्त कर दिया मानो धूड़ी को छान कर मैंने मणि को निकाल लिया ॥७२॥

इस सम्पूर्ण जगत् को धूयें के महल के समान असत् जान कर दूर से ही त्याग दिया है। और इसके जय अजय को सर्वथा हृदय से निकाल कर फैंक दिया ॥७३॥

अखण्ड सच्चिदानन्द आत्मा को साक्षात् जान कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैंने मानों अमृत पान कर लिया और अब मैं अजर अमर हो गई ।।७४।।

[२२]

काफ़—कौन जाणे जाणजाणदी नूं, आप जानणे हार एह कुल्ल दा है।
परत्यक्ष थीं आदि प्रमाण जेते, सिद्ध कीते इसदे नहीं भुल्लदा है।
नेति नेति कर वेद बखाणदे नें, नहीं दूसरा इसदे तुल्य दा है।
बुल्हाशाह सम्भाल जब आप देखा, सदा स्वयं प्रकाश एह झुल्लदा है।।

को वेद वेदितुर्वेदं स हि सर्वस्य वेदिता।
स्फोरयन्नेव मानानि न च विस्मर्यते क्वचित् ।।७५।।
नेति नेतीत्यमुं वेदा व्याख्यान्त्यन्यो न तत्समः ।।७६।।
संनिभाल्य यदा चायमपरोक्षीकृतोऽभवत्।
सत्तया योजयन् सर्वं स्फुरन्नासीत् स्वयंप्रभः ।।७७।।

श्लोकार्थः—इस ज्ञान के भी साक्षी को कौन जान सकता है। वह ही सर्व को जानने वाला है। प्रमाणों को भी प्रकाशित करता हुआ आत्मा कभी विस्मृत नहीं होता ।।७५।।

सब वेद नेति नेति करके इसका व्याख्यान करते हैं। उसके समान दूसरा कोई नहीं ।।७६।।

जब सम्यक् विचार करके इस आत्मा को अपरोक्ष किया तब सम्पूर्ण को सत्ता प्रदान करता हुआ स्वयं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाश रूप से स्फुरित हुआ ।।७७।।

[२३]

गाफ़—गुज़र गुमान ते समझ वहि के, इस अहंकार दा आसरा कोई नाहीं।
बुद्धि आदि संघात जड़ देखिये जी, पड़ा काष्ठ पाषान ज्यों भूम माहीं।
आप आत्मा ज्ञान स्वरूप तेरा, सदा अफुर न फुर खरा एकसा ही।
बुल्हाशाह विचार सुविवेक सेती खुदी छोड़ खुद हो सुख लहें ताहीं ।।

उत्सराऽहङ्कृतेरेवं विविङ्ध्येकान्तमास्थितः ।
अनात्माभिमतेरस्या नास्ति कश्चिदिहाश्रयः ।।७८।।

बुद्ध्यादीनामयं सङ्घो जड़तां नातिलङ्घते ।
भूमिष्ठमिव पाषाणकाष्ठादीनां कदम्बकम् ।।७९।।

स्वयमात्मा तवायं तु ज्ञानमात्रस्वरूपवान् ।
अस्फुरो न स्फुरो वापि शुद्ध एकरसः सदा ।।८०।।

विचार्यैवं विवेकेन त्यक्त्वाऽहन्तामनात्मगाम् ।
स्वयमात्मी भवन्नात्मा सुखमत्यन्तमश्नुते ।।८१।।

श्लोकार्थः—अहंकार से रहित होकर एकान्त में स्थित होकर आत्मा का विवेचन करो । इस अनात्माभिमान का वस्तुतः कोई भी आश्रय (विषय) नहीं ।।७८।।

बुद्धि, इन्द्रिय आदि का समूह रूप देह जड़ता को उल्लङ्घन नहीं करता अर्थात् इस प्रकार जड़ है जैसे पृथिवी पर पड़े हुये काष्ठ पाषाणादि का समूह हो ।।७९।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारा आत्मा तो स्वयं ज्ञान स्वरूप अर्थात् चेतन-मात्र है। इसमें फुरना अफुरना नहीं किन्तु वह शुद्ध और सदा एकरस है ॥८०॥

इस प्रकार विवेक पूर्वक विचार करके अनात्मविषयक अहंकार को छोड़कर आत्मा आप स्वरूपस्थ होकर आनन्द रूप हो जाता है ॥८१॥

[२४]

लाम–लग आखे जाग कहां सोया, जानबुझ के दुःख क्यों पावना है।
जरा आप न हटें बुराइयां तों, कढ मस्सले लोक सुनावना है।
काकविष्ठ ज्यों जाण के तजी सन्तां, विषय माहि क्यों चित्त भुलावना हैं।
बुल्हाशाह ओह जानणेहार दिलदा, करें चोरियां साध सदांवदा हैं।

घटस्वोक्ते भवोन्निद्रः क्व सुप्तोऽसि प्रमादवान्।
जानता बुध्यता कस्माद्दुःखमानेयमात्मनि ॥८२॥
स्वयं नोपरतः पापान्निष्पापाः कुरुषे कथाः।
काकविष्ठेति निष्ठथूता ननु शब्दादयो बुधैः ॥८३॥
तेषु किम् भ्रमयेश्चित्तं स हि जानीत आन्तरम्।
स्तेयमेव चरन्त्साधुमात्मानं परिभाषसे ॥८४॥

श्लोकार्थः—हे मानव ! पूर्वोक्त साधन में तत्पर होकर निद्रा को त्याग कर। ऐ प्रमादी ! कहाँ सोया पड़ा है। जान बूझ कर अपने आत्मा में क्यों दुःख लाता है ॥८२॥

स्वयं तू पापों से उपराम नहीं होता और निष्पाप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञानकथाओं को करता है। क्योंकि सच्चे विद्वानों ने शब्दादि विषयों को काकविष्ठा के तुल्य जान कर त्याग कर दिया है ॥८३॥

इन शब्दादि विषयों से चित्त को क्यों भ्रमित करता है। वह परमात्मा तेरी अन्दर की सब बातों को जानता है। स्वयं चोरी करता हुआ अपने आप को साधु कह रहा है ॥८४॥

[८५]

मीम—मौजुद ओह हरजा मौला, उसे वेख क्या रूप बनाया सू।
जिवें इकही तुखम बहु तरह दिस्से, तिवें आपणा आप फैलाया सू।
सदा अपणे आप विच खेलदा है, पुरुष नारी होय चित्त मिलाया सू।
बुल्हाशाह नहीं मूल थीं कुछ होया, सोई जाने जिसे आप जनाया सू।

विद्यते स हि सर्वत्र महानात्माऽखिलेश्वरः ।
पश्यामुं किं धृतं तेन रूपमत्यन्तमद्भुतम् ॥८५॥
एकमेव यथा बीजं बहुधा दृश्यते तरौ ।
स्फारयन्नेवमात्मानं मायी स्वस्मिन्त्स खेलति ॥८६॥
स्त्रीपुंसभावमापद्य मेलयामास मानसे ।
वस्तुतो नाभवत्किञ्चिद्वेद तत्तदनुग्रही ॥८७॥

श्लोकार्थः—सर्व का ईश्वर वह महान् आत्मा सर्वत्र विद्यमान है। उसको देख कि उसने यह जगत् रूप क्या अद्भुत स्वरूप धारण किया है ॥८५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस प्रकार एक वृक्ष का बीज ही पत्र पुष्पादि नाना रूप से दिखाई देता है, उसी प्रकार यह परमात्मा भी माया के बल से अपने आपको नाना रूप बनाकर अपने आप में ही खेल रहा है ॥८६॥

स्त्री पुरुष भाव को प्राप्त होकर परस्पर मनों को मिलाता है। वास्तव में कुछ हुआ नहीं। परन्तु इस बात को उस परमेश्वर के अनुग्रह का कोई पात्र ही जान सकता है ॥८७॥

[२६]

नून—नाम ते रूप उठाय दीजे पीछे अस्ति भाति प्रिय साच है जी।
जोई चित्त की चितवनी बीच आवे, सोई जाण तहकीक कर काच है जी।
तीन बुद्धि दी वृत्ति दा तूं ही साक्षी, तिने छाड निज बोध में राच है जी।
बुल्हाशाह तूं भूप अचल बैठा, तेरे आगे प्रकृति को नाच है जी॥

जगतो नामरूपे द्वे समुद्घृत्यावशेषितम्।
अस्तिभाति प्रियं चेति त्रयं सत्यं विनिर्णयेत् ॥८८॥
चेतसा चिन्तितो यः स्यादसौ काचो न सन्मणिः।
साक्षी त्वमेव शेमुष्या वृत्तीनां तिसृणामसि ॥८९॥
वृत्ति तादात्म्यमाच्छिद्य साक्षिण्येव रतो भव।
भूपं सिंहासनारूढं प्रकृतिस्त्वाऽभिनृत्यति ॥९०॥

श्लोकार्थः—जगत् के नाम रूप का बाध करके शेष रहे अस्तिभाति प्रिय रूप सद्ब्रह्म का निर्णय करो ॥८८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और चित्त का जो दृश्य है वह काच के समान है अर्थात् मिथ्या है, मणि के समान नहीं अर्थात् सत् नहीं तुम ही बुद्धि की सात्त्विक, राजस और तामस वृत्तियों के साक्षी हो ॥८९॥

अतः वृत्ति के तादात्म्य को छोड़कर साक्षी में निरत हो अर्थात् प्रीति करो। तुम सिंहासनारूढ़ भूपाल राजा के समान हो और तुम्हारे सामने सब दृश्य प्रकृति के नृत्य के तुल्य है ॥९०॥

[२७]

वा––वकत इहो हत्थ न आवणाई, इक पल दें लख करोड़ देवें।
जतन करें ताँ आप अचल होवें, तूं तां पहर अट्ठे विषय विष सेवें।
करें कूड़ व्यापार सिर धूड़ मेलें, चिन्तामणी तज देह काच लेवें।
बुल्हाशाह सम्भाल निज रूप ताईं, तूं तां विभु लघु देह में कहाँ मेवें॥

नायमेतादृशः कालो हस्तयोः पुनरेष्यति।
अपि दद्याः पलस्यार्थे लक्षकोटि धनोत्करम् ॥९१॥
यदि कुर्याः परं यत्नं भवेरेवाचलः स्वयम्।
त्वं तु नक्तं दिवं तावत् सेवसे विषयं विषम् ॥९२॥
कृत्वा कूटानि कर्माणि मस्तके धूलि मस्यसि।
चिन्तामणिं परित्यज्य काचमेवोपयाचसे ॥९३॥
विचारय निजं रूपं विभुस्त्वं देहके लघौ।
कथं मास्यसि नाकाशो म्रियते मठिकोदरे ॥९४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकार्थः—मनुष्य-जीवन का उत्तम अवसर फिर हाथ नहीं आयेगा, चाहे एक क्षण के लिये तुम लाख करोड़ रुपये भी दो ॥९१॥

यदि तुम यत्न करो तो अचल अर्थात् ब्रह्म स्वरूप हो सकते हो, परन्तु तुम दिन-रात्रि विषय रूप ज़हर का सेवन करते हो ॥९२॥

खोटे कर्म करके तुम अपने सिर पर धूल डालते हो। चिन्तमणि को छोड़कर काच की याचना करते हो ॥९३॥

तुम अपने स्वरूप का विचार करो कि तुम विभु होकर इस छोटे से देह में कैसे समा सकते हो, क्योंकि महान् आकाश छोटे से मठ के अन्दर नहीं समा सकता ॥९४॥

[२८]

हे—हर तरह दिस्से दिलदार प्यारा, रङ्ग रङ्ग दे रूप वनाय के जी।
कहुँ आप भुलाय रंजूर होया, अध ऊर्ध्व भरमे दुःख पाय के जी।
जभी आप में आप प्रगट होया, निजानन्द के माहिं समाय के जी।
वुल्हाशाह जो आदि था अन्त सोई, जाय नीर में नीर समाय के जी॥

वहुधा दृश्यते श्रेयान् कृत्वा रूपाण्यनेकशः।
विस्मृत्यात्मानमेवायं क्वचिदासीदिहाऽऽकुलः ॥९५॥
अधऊर्ध्वभ्रमेणायं प्रापदापदमुत्कटाम्।
स्वयमाविर्भवन्नात्मन्यात्मानन्दं समाविशत् ॥९६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यादृगासीदसावादौ तादृगन्तेऽभवत्पुनः ।
नीरमेव यथा नीरे मिलित्वाऽभिन्नतां गतम् ॥९७॥

श्लोकार्थः—परप्रेमास्पदात्मा औपाधिक अनेक रूप बना कर बहु प्रकार दीखता है और अपने आप को भूल कर कहीं व्याकुल हुआ फिरता है ॥९५॥

अधोलोक और ऊर्ध्व लोकों में भ्रमण करता हुआ महा विपत्ति को प्राप्त होता है और जब अपने निरुपाधिक स्वरूप में आविर्भूत होता है, तब अपने ही आप स्वरूपानन्द में मग्न हो जाता है ॥९६॥

और फिर जैसे आदि में था, अन्त में वैसा ही हो जाता है जैसे जल में जल मिलकर एक रूप हो जाता है ॥९७॥

[२६]

अलफ—अज होया सभी चज्ज मेरा, गमी शादी दे पार खलोया मैं ।
भया दूर दिल भरम सब मरम पाया, डर काल दा काजिया खोया मैं ।
साध सङ्ग की दया से भया निर्मल, घटघट चैतन्य सुख सोया मैं ।
बुल्हाशाह सम्भाल जब मूल देखा जोई आदि था अन्त फिर होया मैं ।

अद्य मे सफलं सर्वं साधनं बाह्यमान्तरम् ।
हर्षशोकमयं सिन्धुं तीर्त्वा पारेऽस्म्यवस्थितः ॥९८॥
व्यगलन् भ्रान्तयः सर्वा मर्म सर्वमवेक्षितम् ।
अहो कालभयं चापि गुरुभिर्मेऽपसारितम् ॥९९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृपया निर्मलीभूतः श्रोत्रियाणां महाधियाम् ।
चैतन्यसुखरूपेण शये सर्वहृदन्तरे ॥१००॥
संनिभाल्य यदा सर्वमूलमालोकितं मया ।
तदेवान्तेऽभवं पूर्वं यदाऽऽसमतुलं महत् ॥१०१॥

श्लोकार्थः-—ब्रह्म साक्षात्कार के पश्चात् विद्वान् के उद्गार हैं कि आज मेरा अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग साधन-समूह सफल होगया। हर्षशोकमय संसार समुद्र को तैर कर मैं परले पार खड़ा हूं ॥९८॥

सर्वभ्रान्तियां नष्ट होगईं और सव मर्म अर्थात् रहस्य ज्ञात होगया। अहो! काल का भय भी मेरा गुरुजनों ने दूर कर दिया ॥९९॥

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं की कृपा से मैं सर्वथा निर्मल होगया। अब मैं चैतन्य एवं सुखरूप से सर्व के हृदयाकाश में ही शयन कर रहा हूं ॥१००॥

जब मैंने सम्यक् विचार के द्वारा जगत् के मूल-कारण को देख लिया तो मुझे यह अनुभव हुआ कि जो पहिले मैं निरुपम, एक महान् तत्त्व था; वही अन्त में होगया ॥१०१॥

[३०]

ये—यार पाया सय्यो मेरियो नी, मैं तां आपणा आप गंवाय के जी।
रही सुद्ध न वुद्ध जहान केरी, थकी वृत्ति आनन्द में जाय के जी।
अट्ठे पहर विश्राम नहीं काम कोई, दूजी ज्ञान की भाहि जलाय के जी।
बुल्हाशाह मुबारखां लख देवो, भई जानी जानी गल लाय के जी॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अयि सख्यो मया लब्धः प्रेयान्त्सविसमय्य माम् ।
न स्थिताऽथ जगज्ज्ञप्तिर्वृत्तिरानन्दमाश्रितः ॥१०२॥

विश्रान्तिरधुना नित्यं कर्तव्याऽभावतोऽभवत् ।
द्वैतजीर्णवनं दग्धं ज्ञानवह्निशिखाशतैः ॥१०३॥

दत्त मे धन्यता वादान् लक्षं हर्षोद्भवान् रवान् ।
कुरुतेयमहोशान्तिर्लब्धा लोकोत्तरा मया ॥१०४॥

प्रिययेव परिष्वज्य प्रियं प्राणेश्वरं पतिम् ।
समालिङ्ग्य सदानन्दं प्रेयांसमिममद्भुतम् ॥१०५॥

तमेवैकमहो प्रेष्ठमालिङ्ग्य मनसा दृढम् ।
स एवाभूवमधुना द्वैतं नैवावलोक्यते ॥१०६॥

अद्वैतमननादेवं द्वैतमिथ्यात्व बोधनात् ।
अनात्मसङ्गविरहाद् साक्षादात्माऽवलोकनात् ॥१०७॥

अखण्डं परमानन्दं बोधरूपं परात्परम् ।
निरस्त द्वैतजालं सद् ब्रह्मैकमवशिष्यते ॥१०८॥

इति अनन्तश्रीविभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ स्वामिविष्णुदेवानन्द गिरि कृत अद्वैत-मुक्तावल्या प्रथमो भागः समाप्तः ॥

श्लोकार्थः—एकात्मवृत्ति अन्य वृत्तियों को सम्बोधित करके कहती है—'मिथ्या देह के अभिमान को त्याग करके ही परप्रेमास्पद आत्मा का मुझे लाभ हुआ है और जगत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की प्रतीति भी समाप्त हो गई तथा वृत्ति परमानन्द में प्रविष्ट हो गई ॥१०२॥

और अब समस्त कर्तव्यों के अभाव से नित्य विश्रान्ति प्राप्त हुई एवं ज्ञानाग्नि की सैंकड़ों ज्वालाओं के द्वारा जगत्रूप यह जीर्णवन दग्ध होगया अर्थात् द्वैत-आसक्ति सर्वथा समाप्त हो गई ॥१०३॥

अब मुझ को लाखों धन्यवाद देते हुये हर्षध्वनि करो। प्राणेश्वर प्रियपति को आलिङ्गन करके प्रिया की न्याईं इस सदानन्दस्वरूप अद्भुत प्रियात्मा को पाकर मैंने अलौकिक शान्ति का लाभ किया है ॥१०४–१०५॥

इस एक परप्रेमास्पदात्मा का दृढ़ मन से ध्यान करके अब मैं वही होगई। द्वैतदर्शन समाप्त होगया ॥१०६॥

इस प्रकार अद्वैततत्त्व के मनन से और द्वैत के मिथ्यात्व बोध से, अनात्म शब्दादि की आसक्ति के अभाव से तथा आत्मा के साक्षात् दर्शन से—॥१०७॥

अखण्ड, परमानन्द; बोधस्वरूप, परात्पर, द्वैत जाल से निर्मुक्त सद्ब्रह्म ही एक अवशेष रहता है ॥१०८॥

अनन्त श्रीविभूषित परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ स्वामिविष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज कृत अद्वैत-मुक्तावली के प्रथम भाग का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

सीहरफी सन्त मय्यादास

[१]

अलफ—अज आया शरण गुरांदी मैं, सहित साधनां दे उपतेश लीता।
गुरां करी कृपा महावाक सुण्या, तत् त्वं दा अर्थ विचार लीता।
पञ्च कोश नूं शोध के साक्ष्य जाता, साक्षी आपनूं सर्वका समझ लीता।
साक्षी ब्रह्मस्वरूप न भेद कोई, कर लक्षणा लक्ष पीयूश पीता॥

अद्याहं शरणं यातो गुरून् साधन संयुतः।
उपदेशो मयाऽग्राही कृता मे गुरुभिर्दया ॥१॥
श्रावितं च महावाक्यं तत्त्वमर्थौ विवेचितौ।
पञ्चकोशान्विशोध्येक्ष्यानात्मा साक्षीविनिश्चितः ॥२॥
साक्षी ब्रह्मस्वरूपोऽयं भेद लेशो न विद्यते।
लक्षणां भागतः कृत्वा पीतं लक्ष्यामृतं महत् ॥३॥

श्लोकार्थः—आज मैं साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर गुरुओं की शरण में गया और गुरुओं ने कृपा की, मैंने उपदेश ग्रहण किया ॥१॥

महावाक्यों का श्रवण करके 'तत्' 'त्वम्' पदार्थों का विवेक किया। पञ्चकोश रूप साक्ष्यों का शोधन करके अपने आपको साक्षी निश्चय किया ॥२॥

और निश्चय किया कि साक्षी ब्रह्मस्वरूप है। लेश मात्र भी साक्षी का ब्रह्म से भेद नहीं। भाग-त्याग लक्षणा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करके लक्ष्य ब्रह्मरूप अमृत का पान किया ॥३॥

[२]

थे—बुद्धि ते आदि है दृश्य तेरी द्रष्टा आपणा आप असङ्ग जानो ।
जीव जाणया देह अध्यास करके धरम अन्य के आपणे बीच मानों ।
देह साथ की तेरड़ा संग प्यारे ज़रा चित्त में चतुर विचार ठानों ।
जाण आपणा आप आनन्द होवो समय सुन्दर है बहुत विचारवानों ॥

बुद्ध्यादिकं भवद्दृश्यं द्रष्टाऽसङ्गः स्वयं भवान् ।
देहाध्यासेन जीवत्वमन्यधर्मास्तथाऽऽत्मनि ॥४॥
देहेन सह सम्बन्धः कस्तवेति विचारय ।
नन्दाऽऽत्मानमभिज्ञाय समयः साधुरागतः ॥५॥

श्लोकार्थः—गुरुदेव उपदेश करते हैं कि बुद्धि, इन्द्रियां, प्राण आदि तेरे दृश्य हैं । तुम स्वयं द्रष्टा और असङ्ग हो । देह-अध्यास के द्वारा ही जीवभाव तथा अनात्म धर्मों का आत्मा में आरोप हुआ है ॥४॥

वस्तुतः देह के साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, यह विचार करो । आत्मा को जानकर आनन्द प्राप्त करो । अवसर अमूल्य प्राप्त हुआ है ॥५॥

[३]

ते—तुल्य तेरे नहीं होर कोई कैसे भेद सजाती को पाइये जी ।
मूल सहित परपञ्च न कभी होया कैसे भेद विजाती को गाइये जी ।
निराकार आकार ते रहित है तूं कैसे भेद स्वगत दिखाइये जी ।
भेद तीन ते हीन स्वरूप तेरा वृत्ति तिस के मध्य लगाइये जी ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपरो न त्वया तुल्यः सजातीयात् कथं भिदा ।
समूलं न जगज्जातं विजातीयाद्भिदा कुतः ॥६॥

निष्कलस्त्वं निराकारः कथं स्यात्स्वगताद्भिदा ।
अतित्रिभेदि ते रूपं तत्र वृत्तिं समासज ॥७॥

श्लोकार्थः—तुम्हारे तुल्य दूसरा कोई नहीं है, अतः सजातीय भेद कैसे हो सकता है और यह जगत् मूल के सहित कभी हुआ नहीं इसलिये विजातीय भेद भी कैसे हो सकता है ?६॥

तुम वस्तुतः निरावयव और निराकार हो, इस वास्ते स्वगत भेद कैसे हो सकता है ? अतः तीनों भेदों से रहित तुम्हारा स्वरूप है, इसमें वृत्ति को लगाओ ॥७॥

[४]

से—सर्प भासे जैसे जेवरी में तैसे जान संसार असार सारा।
ज़रा चित्त में करो विचार भाई प्रपञ्च तैथों नहीं रञ्च न्यारा।
विश्व तैजस प्राज्ञ विराट भाई हिरण्यगर्भपन ईश्वर मृगवारा।
बाकी सच्चिदानन्द स्वरूप जोई सोई आपणा आप है प्रेम प्यारा ॥

रज्ज्वामिव भुजङ्गोयमसारो भासते भवः ।
मनस्यालोचयेस्त्वत्तो न प्रपञ्चोऽपि भिद्यते ॥८॥

विश्वाद्यो विराडाद्या मृगवारिसमा मताः ।
अवशिष्टश्चिदात्माऽयं परप्रेमास्पदं स्वयम् ॥९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकार्थः—किञ्च रज्जु में सर्प की न्याईं यह असार संसार आत्मा में मिथ्या प्रतीत हो रहा है। मन में विचार करो कि यह प्रपंच तुम से भिन्न कुछ भी नहीं ॥८॥

विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, ये सब मृगतृष्णा के जल के समान कल्पित हैं। इनका बाध करके शेष रहा चिदात्मा ही स्वयं परप्रेमास्पद है ॥९॥

[५]

जीम—जाणया आपणे आपनूं मैं कर्त्ता भोक्ता भाव उठाइयाई।
जिसका धर्म सी उसी गल डाल दिया विच्चों आपणा आप छुड़ाइयाई।
नहीं रञ्च स्वरूप में भ्रम भासे निजानन्द के वीच समाइयाई।
मूल सहित प्रपञ्च न कभी होया तीनों काल निश्चय एहो आइयाई॥

विदित्वाऽऽत्मानमुत्सृष्टा कर्तृत्वादिविकल्पना।
यस्य ते तत्र धर्मास्तान् दत्त्वैवात्मा विमोचितः ॥१०॥

न स्वरूपेऽथ मे भ्रान्तिर्निजानन्दे समाविशम्।
न समूलः प्रपंचोऽयं कदाप्यस्तीति निश्चितम् ॥११॥

श्लोकार्थः—शिष्य का वचन है कि मैंने आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जानकर कर्तृत्वादि धर्मों की निवृत्ति कर दी और यह जिस के धर्म थे उसमें उन धर्मों को डाल कर आत्मा को उन से मुक्त कर लिया ॥१०॥

अब मुझे अपने स्वरूप में कोई भ्रान्ति नहीं रही। मैं निजानन्द को प्राप्त हुआ और यह निश्चय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया कि मूल सहित प्रपंच कभी हुआ ही नहीं ॥११॥

[६]

चे—चन्द्र सूर्य आदी हैन जेते सारे आपणा आप स्वरूप जानों ।
कछु कीट कुरङ्ग भुजङ्ग में जी सारे आपणा आप स्वरूप मानों ।
नाम रूप माया भाग त्याग दीजे शेष सच्चिदानन्द में प्रीति ठानों ।
गुरुशास्त्र पुकार पुकार कँहदे आप चित्त में लखो विचारवानों ॥

चन्द्रसूर्यादिकं सर्वमात्मरूपं निबोधत ।
कच्छपाऽह्येण कीटेषु मन्यध्वं रूपमात्मनः ॥१२॥
मायिकं नामरूपांशं हित्वा शेषे चिदात्मनि ।
प्रीयध्वं गुरुशास्त्राणि बोधयन्ति विविङ्क्त भोः ॥१३॥

श्लोकार्थः—श्री गुरुदेव कहते हैं कि चन्द्र, सूर्यादि ज्योतियों को आत्मरूप निश्चय करो और कछुआ, सर्प, मृग और कीट पतङ्गों में आत्मा के ही रूप को मानों ॥१२॥

मायिक नाम-रूप अंश को त्याग करके शेष रहे चिदात्मा में ही प्रीति करो। गुरुशास्त्र यही बोधन करते हैं। विचार करो ॥१३॥

[७]

हे—होश कर समझ स्वरूप ताईं एस माया ने तैंनूं भुलाया है ।
देह साथ अध्यास करवा तेरा कर्ता भोक्ता तुझे बनाया है ।
विभु शुद्ध स्वरुप अखण्ड तेरा एस माया ने इसे छुपाया है ।
निराकार आकार से रहित है तूं तैंनूं सहित आकार दिखाया है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सावधानोऽवगच्छ स्वं भ्रामितोऽसीशमायया ।
वपुरध्यासमापाद्य कर्ता भोक्ता कृतोऽमुया ॥१४॥

विभुशुद्धमखण्डं ते रूपं मायातिरस्कृतम् ।
निराकारोऽपि साकारो माययाऽसि विदर्शितः ॥१५॥

श्लोकार्थः—सावधान होकर अपने आप को जानों। ईश्वर की माया से तुम भ्रान्त होगये हो और इस माया ने ही देह-अध्यास के द्वारा तुम को कर्ता-भोक्ता बना दिया है ॥१४॥

तुम्हारा व्यापक, शुद्ध तथा अखण्ड स्वरूप माया ने आवृत्त कर दिया है। तुम निराकार होते हुये भी माया द्वारा साकार हो रहे हो ॥१५॥

[८]

खे—खोज देखो शुद्ध ब्रह्म है तूं तैंनूं दुष्ट अज्ञान ने जीव कीता।
चाह चित्त से त्याग अचाह हो तूं इस चाह चूहड़ी तुझे मार लीता।
तेरे बाझ न दूसरा होर कोई ब्रह्म आपणे आप नूं लखो मीता।
चारों वेद पुराण पुकारदे नें कूक कूक के आखदी सुनो गीता॥

पश्यान्विष्य विशुद्धं त्वं ब्रह्मैवासि विचारतः ।
अज्ञानेन कृतो जीवो दुष्टेनानेन केवलम् ॥१६॥
त्यक्त्वेच्छांत्वंभवानिच्छश्चाण्डाल्याऽसि हतोऽनया ।
त्वदन्यन्न किमप्यस्ति ब्रह्मात्मानं विनिश्चिनु ॥१७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदाश्चत्वार एवैते पुराणानि च सर्वशः ।
ब्रुवन्त्येवमथाऽऽख्याति गीता कोकूय्य कर्णयेः ॥१८॥

श्लोकार्थः— विचार द्वारा खोज कर देखो कि तुम शुद्ध ब्रह्मस्वरूप ही हो । केवल इस दुष्ट अज्ञान ने ही तुमको जीव बना दिया है ॥१६॥

तुम इच्छा को त्याग करके सर्वथा निःस्पृह हो जाओ क्योंकि इस चाण्डालिनी इच्छा ही ने तुमको अधम बना दिया है । तुम से भिन्न और दूसरा कुछ नहीं है । तुम अपने आपको ब्रह्म निश्चय करो ॥१७॥

चारों वेद तथा सर्व पुराण यही कह रहे हैं और गीता भी उच्च स्वर से यही कह रही है । तुम उसे श्रद्धा से श्रवण करो ॥१८॥

[६]

दाल—दौलतां पायके मस्त होयों भुल्लगियों आयों जेहड़े कम्म नूं तूं ।
पुत्र भार्या नाल त्ं प्रीत लाई हत्थ पाय बैठों हड चम्म नूं तूं ।
वार वार न मानुष देह भय्या पच्छोतावसेंगा दम्म दम्म नूं तूं ।
दुःखरूप संसार असार सारा लखो आपणे आप अगम्म नूं तूं ॥

प्राप्यैश्वर्यमभूर्मत्तो व्यस्मरः कार्यमात्मनः ।
पुत्रभार्यादिषु प्रीतः कृत्हस्तोऽस्थिचर्मणोः ॥१९॥
असकृन्न मनुष्यत्वं पश्चात्तापं करिष्यसि ।
हित्वा निःसारसंसारमात्मानं विद्धि दुर्गमम् ॥२०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकार्थः——मिथ्या जगत् के ऐश्वर्य को पाकर तुम मदोन्मत्त होगये । अपने सच्चे कार्य को भूल गये । और पुत्र, भार्या आदि में आसक्त हुये अस्थि तथा चर्म में चित्त लगा बैठे ॥१९॥

यह मनुष्य जीवन बार-बार नहीं मिलेगा पीछे पश्चात्ताप करोगे । अतः इस असार संसार को त्याग करके अतिदुर्बोध आत्मा को ही जानो ॥२०॥

[१०]

जे—ज़ोर दा कुछ न वट्टिये जी दम्मां दित्तयां हत्थ न आंवदाई ।
जाति वर्ण आश्रम गोत्र नियत नाहीं करे प्रेम सोई नर पांवदाई ।
गुरां पूरयां बाझ न बोध होवे डुब विच्च संसार दे जांवदाई ।
दुःख रूप संसार असार सारा सुख रूप एह जाणके धांवदाई ॥

न बलेन धनेनापि न च वर्णाश्रमादिभिः ।
लभ्य आत्मा भवेत् किन्तु प्रेम्णाऽनन्येन गम्यते ॥२१॥
नहि पूर्णपदारूढानन्तरेण गुरूनिह ।
विन्दते तत्त्वसंबोधं मज्जतीह भवार्णवे ॥२२॥
दुखरूपेऽथ निःसारे संसारे सारताधिया ।
अबोधोऽयमहोलोकः शोकेन परिधावते ॥२३॥

श्लोकार्थः—यह आत्मा न बल से, न धन से, न वर्णाश्रम आदि के धर्मों से लभ्य हो सकता है, किन्तु केवल अनन्य प्रेम से ही प्राप्त हो सकता है ॥२१॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं के उपदेश के बिना कोई इस आत्म-तत्त्व को नहीं पा सकता, प्रत्युत इस संसार में ही डूब जाता है ॥२२॥

अहो ! यह संसारी मूढ़जन दुःखरूप तथा निःसार संसार में सारबुद्धि करके शोक के मारे भागता फिरता है ॥२३॥

[११]

रे—रूपते नाम को छोड़ दीजे बाकी सच्चिदानन्द स्वरूप तेरा ।
निरावरण अज्ञान से रहित हैं तूं तोड़ भरम दा पिञ्जरा गज्ज शेरा ।
जातिवर्णां दी फाही विच फस रिहों ब्रह्म आपणा आप न लखें नेरा ।
सुख रूप भूमा भय्या आप है तूं कह्या वेद दा मान लै हो नवेरा ॥

नामरूप विमोके तु शिष्टं सच्चित्सुखात्मकम् ।
वस्तुरूपं त्वदीयं तत् त्वम् निरावरणः सदा ॥२४॥

भङ्क्त्वा भ्रममयं तावत् पञ्जरं गर्ज सिंहवत् ।
जातिवर्णादिपाश्याभिः पाशितः परिवर्तसे ॥२५॥

आत्मानमेव नेदिष्ठं न त्वं ब्रह्मावबुध्यसे ।
सुखभूमाऽसि वेदोक्तं मानयस्व विमुच्यसे ॥२६॥

श्लोकार्थः—गुरुदेव कहते हैं कि मिथ्या नाम-रूप का बाध कर शेष रहा सत्, चित् और सुख रूप ब्रह्म ही तेरा स्वरूप है । तुम निरावरण हो अर्थात् स्वयंप्रकाश हो ॥२४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञान द्वारा भ्रान्ति के पिञ्जरे को तोड़ कर तुम सिंह-नाद करो। जाति, वर्ण आदि में अध्यास के पाशों द्वारा बद्ध हो रहे हो ॥२५॥

अतः अत्यन्त समीपवर्ति आत्मा को ब्रह्मरूप नहीं मान रहे हो। 'तुम ही भूमा आनन्द स्वरूप हो', वेद के इस कथन को मानो, मुक्त हो जाओगे ॥२६॥

[१२]

जे—जागके वेख स्वरूप ताईं लीता घेर अविद्या नींद तैंनूं।
दृश्यमान प्रपञ्च एह स्वप्न तेरा सत्य मन्न बैठों मन माहिं जैंनूं।
विना जागेयां कभी न दूर होवे होर हुई उपाय तां दस मैंनूं।
शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप है तूं भुल्ला आपनूं भालदा फिरें कैंनूं।

जागृहीक्षस्वरूपं स्वमविद्यानिद्रयावृतः।
दृश्यमानः प्रपञ्चस्ते स्वप्नः सत्यं यमीक्षसे ॥२७॥
जागरामन्तरेणायं न निरस्तो भविष्यति।
दर्शयस्व तदा त्वं मां साधनान्तरमस्ति चेत् ॥२८॥
शुद्ध सच्चित्सुखात्माऽसि त्वमेव परमेश्वरः।
प्रत्यञ्चमेवमस्मृत्वा वर्तसे कं निभालयन् ॥२९॥

श्लोकार्थः—अविद्या निद्रा ने तुमको पकड़ लिया है। तुम जागो और अपने स्वरूप को देखो। दृश्यमान यह प्रपञ्च तुम्हारा ही स्वप्न है, जिसको तुम सत्य समझ रहे हो ॥२७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह प्रपञ्चरूप स्वप्न जागे विना अर्थात् ज्ञान के विना निवृत्त न होगा। यदि कोई दूसरा साधन हो तो दिखाओ अर्थात् नहीं है ॥२८॥ आत्मज्ञान का उपदेश गुरुदेव करते हैं कि तू ही शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मा है। ऐसे प्रत्यक् आत्मा को भूल कर किसको खोज रहे हो ? २९॥

[१३]

सीन-सर्व प्रपंच अनित्य जाणों नित्य आत्मा ब्रह्म स्वरूप है जी।
नेति नेति कर वेद पुकारदेनें निराकार असङ्ग स्वरूप है जी।
बुद्धि वेश्या इन्द्रिय तालधारी विषय ताल अहङ्कार एह भूप है जी।
साक्षी दीप समान प्रकाश करदा हर्ष शोक से रहित पुनीत है जी॥

अनूप

सर्व एष प्रपञ्चो नग् ब्रह्मैवात्मा कदाप्यनट्।
नेति नेतीति वेदोक्त्याऽसङ्गोऽरूपो निराकृतिः ॥३०॥
इन्द्रियाणां गणास्तावज् झार्झरो गणिका मतिः।
विषयास्तालरूपाः स्युरहङ्कारोऽत्र भूपतिः ॥३१॥
साक्षी चैतन्यमात्रात्मा दीपः सर्वं प्रकाशयेत्।
हर्षशोकविनिर्मुक्तः पावनः परमो भवेत् ॥३२॥

श्लोकार्थः—यह दृश्यमान समस्त प्रपञ्च विनश्वर है। ब्रह्म-स्वरूप आत्मा ही अविनाशी है और नेति नेति इत्यादि वेद-वचनों से आत्मा असङ्ग, अरूप और निर्विकार है ॥३०॥

इस शरीर में इन्द्रियों का गण ताल देने वाला है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धि नृत्य करने वाली गणिका है, विषय ताल हैं और अहङ्कार राजा है ।।३१।। साक्षीरूप चैतन्य आत्मा दीपक के तुल्य सर्व को प्रकाशता है और हर्ष-शोक से रहित तथा परम पवित्र है ।।३२।।

[१४]

शीन–शान्त स्वरूप नूं जाण होये जनम जनम दे लाहे स्यापड़े जी ।
तिनके तोड़ चौरासी दे दूर कीते फेर सुट्ट दित्ते तीनों तापड़े जी ।
नरक स्वर्ग दी काण चुका बैठे यमदूतां दे मार के मापड़े जी ।
रही लोड़ न पुच्छने दस्सने दी फिरें जगविच चुप चुपातड़े जी ।।

शमीं भूताःस्म आत्माप्त्या जन्मजन्मापदो हताः ।
चतुरशीतियोनीनां त्रोटितानि तृणान्यपि ।।३३।।

त्यक्तं तापत्रयं नाकनरकाशा न विद्यते ।
हतबन्धुनिभा जाता हताशा यमकिङ्कराः ।।३४।।

नास्माकमधुना शिष्टं प्रष्टव्यं श्रावणोचितम् ।
मौनमेव सदाऽऽस्थाय विचरामो भुवस्तले ।।३५।।

श्लोकार्थः—बोध के अनन्तर शिष्य का अनुभव है कि आत्मा की प्राप्ति से अब हम परम शान्त हुये और जन्म-जन्मान्तर की आपत्तियां दूर हो गईं । चौरासी लाख योनियों के बन्धनों को तृण के तुल्य तोड़ कर फेंक दिया ।।३३।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तीनों तापों को भी त्याग दिया । स्वर्ग और नरक की आशायें भी विलीन हो गईं अर्थात् उनकी कल्पना ही समाप्त हो गई । यम के किङ्कर माता-पिता मरे हुये यतीम बालक के समान हताश हो गये ॥३४॥

अब हमको कोई प्रश्न या उत्तर बाकी नहीं रहा । मौन को धारण करके ही हम भूतल पर विचरते हैं ॥३५॥

[१५]

स्वाद—स्वाद आया ब्रह्मानन्द दा जी फेर विषयानन्द न भांवदाई ।
ब्रह्मलोक ते आदि लौं भोग जेते तुच्छ जाण न चित्त लुभांवदाई ।
सर्व वासना त्याग प्रशान्त होया होर दीनता सर्व चुकांवदाई ।
निजानन्द में मस्त सदैव रैंहदा चिन्ता त्याग मुड़ किते न धांवदाई ॥

स्वादिते ब्राह्म आनन्दे विषयोत्थो न रोचते ।
ब्राह्मलोकादिभिर्भोगैस्तुच्छत्वान्न मनोहृतिः ॥३६॥
वासनौघं परित्यज्य शान्ते स्वान्ते न दीनता ।
स्वानन्दमदमत्तं तु निश्चिन्तत्वान्न धावति ॥३७॥

श्लोकार्थः—ब्रह्मानन्द का आस्वादन किया, अब विषयानन्द प्रिय नहीं लगता और तुच्छ होने के कारण ब्रह्मलोक के भोग भी मन को आकृष्ट नहीं कर सकते ॥३६॥

वासनाजाल को त्याग करके शान्त हुये मन में कोई दीनता नहीं रही और अपने ही आनन्द में मग्न हुआ यह मन निश्चिन्त होने से कहीं भटकता नहीं ॥३७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[१६]

ज्वाद–ज्योतियां विच्च है जोत मेरी चन्द सूर्य ते आदि लौं हैन जेते।
ज्योति मेरी नूं लै प्रकाशदे नें विना ज्योति मेरी फिक्के हैन तेते।
ज्योति अन्तर हो सर्व प्रकाशदा मैं इस वात नूं जाणदे तत्ववेत्ते।
स्वप्न मध्य भासों वाझ ज्योतियां दे इस वात नूं मूढ़ भी जाण लेते।

मज्ज्योतिरेव सर्वेषु ज्योतिःष्वन्तर्विराजते।
चन्द्रसूर्यादयो भान्ति ज्योतिरादाय मामकम्॥
अन्तरेण तु मज्ज्योतिर्निष्प्रभा हि भवन्ति ते॥३८॥
अन्तर्ज्योतिरहं भूत्वा भासयाम्यखिलं जगत्।
ज्योतिरन्यन्न मेऽपेक्ष्यं विदुस्तत्त्वविदो जनाः॥३९॥
स्वयं भामि सदा स्वप्ने ज्योतिरन्यन्न विद्यते।
इति वृत्तं तु जानन्ति ननु लोके पृथग्जनाः॥४०॥

श्लोकार्थः—सर्व ज्योतियों में मेरी ही ज्योति विराजमान है। चन्द्र, सूर्य आदि भी मेरी ज्योति लेकर प्रकाशमान हो रहे हैं। मेरी ज्योति के बिना वह प्रकाशहीन ही हो जाते हैं॥३८॥

मैं सर्व के अन्दर ज्योति होकर सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता हूँ। मुझे अपने प्रकाश के लिये किसी अन्य ज्योति की अपेक्षा नहीं है, इस बात को तत्त्ववेत्ता जानते हैं॥३९॥

स्वप्न अवस्था में मैं बिना किसी अन्य ज्योति के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वयं प्रकाशता हूं, इस बात को साधारण मनुष्य भी जानते हैं ॥४०॥

[१७]

तोय-तोड़ अविद्या दी फास वीवा तैंनूं ब्रह्म अखण्ड से जीव करया ।
दु:ख रहित आनन्द स्वरूप हैं तूं भुल्ल आपनूं दु:खां दे विच्च पड़या ।
फिरें दीन होंदा भोगां वास्ते तूं भोगां भोगियां दस्स की काज सरया ।
सोई शुद्धस्वरूप नूं जाणदे नें दीवा वाल के ज्ञान दा जिन्हां धरया ॥

त्रोटयाविद्यकं पाशं ब्रह्मणो जीवतावहम् ।
निर्दु:खानन्द रूपोऽपि दुख्यात्माऽस्मरणादभूः ॥४१॥
दीनीभूतोऽसि भोगार्थे भुक्ता भोगाःकृतं तु किम् ।
शुद्धास्ते स्युः स्वरूपज्ञा ज्ञानदीपो व्यदीपि यैः ॥४२॥

श्लोकार्थः—श्री गुरुदेव फिर उपदेश करते हैं कि हे शिष्य ! अविद्या की फांसी को तोड़ डालो जिसने ब्रह्म को जीव बना रखा है । सदा दुःख रहित आनन्द स्वरूप होते हुये भी तुम अपने आप को भूलकर दु:खी आत्मा हो गये हो ॥४१॥

तुम भोगों के लिये दीन हो रहे हो । भोग बहुत से भोगने पर भी तुम को क्या लाभ हुआ है ? जिन्होंने अपने हृदय में ज्ञान-दीपक को प्रकाशित किया है, उन्होंने अपने शुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया ॥४२॥

[१८]

तोय-जुगति अनेक प्रकार की सें परम गुरु जी शिष्य जगांवदे नें ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फर अन्वय और व्यतिरेक युक्ति साक्षी आत्मा वख विखांवदे नें।
जनम मरण ते आदि विकार जेते चिदाभास दे धर्म बतांवदे नें।
बार वार जावां मैं बलिहार गुरु तों साक्षी ब्रह्मस्वरूप दिखलांवदे नें।

जागरयन्त्यनेकाभिर्युक्तिभिर्गुरवः श्रितान्।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां दर्शयन्ति पृथक् दशम ॥४३॥
जन्ममृत्यादिकान्धर्मांञ् चिदाभासेऽर्पयन्त्यमी।
बलिहारो भृशं तेभ्यो निर्दिशन्ति दशं हरिम् ॥४४॥

श्लोकार्थः—गुरु लोग अनेक युक्तियों द्वारा अपने आश्रित जनों को अविद्या-नींद से जगा देते हैं तथा अन्वय-व्यतिरेक युक्ति के द्वारा द्रष्टा को देह आदि से पृथक् करके साक्षात् करा देते हैं ॥४३॥

वह गुरु लोग जन्म मरण आदि धर्मों को चिदाभास के ही धर्म बोधन करते हैं। साक्षी को ब्रह्म-रूप दिखलाने वाले उन गुरुजनों पर मैं वार-वार बलिहार जाता हूं अर्थात् न्यौच्छावर होता हूं ॥४४॥

[१६]

ऐन-ऐश कीजे डर डार दीजे तेरे मध्य प्रपञ्च की गन्ध नाहीं।
निराकार असङ्ग अरूप हैं तूं विधि आदि के साथ सम्बन्ध नाहीं।
स्वतः सिद्ध है अचल स्वरूप तेरा जाणे आवणे दा कोई पन्थ नाहीं।
न तूं जन्मे न मृत भी कभी होवें तेरे बीच में मोक्ष ते बन्ध नाहीं॥

भजानन्दं भयं हित्वा द्वैतगन्धोऽपि न त्वयि।
निराकारोऽस्यसङ्गोऽसि न निषेधो न ते विधिः ॥४५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वतः सिद्धाचलात्मा त्वं न गत्यादि पथस्तव ।
न जातो न म्रियेथास्त्वं बन्धमोक्षौ न ते क्वचित् ॥४६॥

श्लोकार्थः—पुनः गुरुदेव उपदेश देते हैं कि संसार के भय को त्याग करके आनन्द रूप आत्मा को भजो। द्वैत का लेशमात्र भी तुम्हारे में नहीं। तुम असङ्ग निराकार स्वरूप हो। तुम्हारे स्वरूप में विधि-निषेध नहीं है ।४५।

तुम स्वतः सिद्ध अचल आत्मरूप हो। तुम्हारी गति-आगति का कोई मार्ग नहीं अर्थात् तुम्हारा कहीं आना-जाना नहीं बन सकता। वास्तव में तुम्हारा जन्म-मरण नहीं है तथा बन्धन-मोक्ष भी नहीं है ॥४६॥

[२०]

गैन—ज्ञान ते बिना न मोक्ष होवे वेद आखदे हृदय विचारिये जी।
जीव ब्रह्म में भेद न रञ्च कोई ऐसे ज्ञानस्वरूप निहारिये जी।
नभनील समान प्रपञ्च सारा ऐसे जाणके चित्तसे टारिये जी।
दुःखरहित आनन्द स्वरूप हैं तूं स्वतः सिद्ध निश्चय इहो धारिये जी।

विना ज्ञानं न मुच्येथा वेदाः ख्यान्ति विचारयेः।
न जीवब्रह्मणोर्भेदो ज्ञानं निर्धारयेरिदम् ॥४७॥
नभोनैल्य समं ज्ञात्वा चित्तादुत्तारयेर्जगत् ।
निर्दुःखानन्दरूपस्त्वं निश्चयं धारयेरिमम् ॥४८॥

श्लोकार्थः—परन्तु आत्मज्ञान के बिना तुम कभी मुक्त नहीं हो सकते, वेद ऐसा कहते हैं, उनको विचारो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीव और ब्रह्म का वास्तव में कोई भेद नहीं, इस ज्ञान का निश्चय करो ॥४७॥

आकाश की नीलता के समान इस जगत् को मिथ्या जानकर चित्त से निकाल दो। सर्वदा दुःखरहित, आनन्दस्वरूप तुम हो इस निश्चय को धारण करो ॥४८॥

[२१]

फे—फोल संसार को देख लीता कुछ सार न नज़र विच आंवदाई।
चिदानन्द अखण्ड ते भिन्न कीते सत्ता आपणी रञ्च न पांवदाई।
जदों गरजदा सिंह विचार रूपी अगे लग मृग वांग फिर धांवदाई।
नेहनानास्ति वेद दा वजे डङ्का फिर आन न मुख विखांवदाई।

उत्कृत्योत्कृत्य दृष्टोऽयं भवः सारो न वीक्ष्यते।
चिदात्मनः पृथक्कारे सत्ता लेशं न विन्दति ॥४९॥
विचारसिंहहुँकारे मृगवत्स पलायते।
डिण्डिमे नेह नानेति वाद्यमाने विलुप्यते ॥५०॥

श्लोकार्थः—बार-बार विचार करके देखने पर इस संसार में कोई सार नहीं दीखता और चिदात्मा से पृथक् करने पर लेश मात्र भी इसकी सत्ता नहीं सिद्ध होती ॥४९॥

आत्मविचार रूपी सिंह की गर्जन से यह संसार मृग के समान पलायन कर जाता है। "नेह नानास्ति किञ्चन" इत्यादि वेदान्त के डिण्डिम् वजने पर यह संसार कहीं लोप हो जाता है ॥५०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[२२]

काफ़--काल परिच्छेद न जाणिये जी जांते नित्य स्वभाव अपार हैं तूं ।
तेरे मध्य न देश दा भेद कोई जांते व्यापक सर्व आधार हैं तूं ।
नहीं वस्तु परिच्छेद दा नाम किदरे जांते आत्मा सर्वदा सार हैं तूं ।
भेद तीन ते हीन स्वरूप तेरा मन वाणी दे विषय से पार हैं तूं ।

न कालेन परिच्छेदो नित्यापारतया तव ।
विभुत्वान्न च देशेन सर्वाधारतया तथा ॥५१॥
न च वस्तु परिच्छेदः सर्वसारात्मभावतः ।
एवं ते रूपमच्छिन्नमवाङ्मनसगोचरम् ॥५२॥

श्लोकार्थः—नित्य और अपार होने के कारण तुम्हारा कोई कालपरिच्छेद नहीं । व्यापक तथा सर्व का आधार होने से देश परिच्छेद तुम्हारा नहीं ॥५१॥

सर्व का सारभूत आत्मा होने के कारण वस्तु-परिच्छेद भी तुम्हारा नहीं । इस प्रकार तुम्हारा स्वरूप सर्वथा अपरिच्छिन्न तथा अवाङ्मनसगोचर है अर्थात् मन वाणी का अविषय है ॥५२॥

[२३]

गाफ—ज्ञात ही सत्त्व संसार सारा नहीं पूर्वोत्तर में लेश जांकी ।
पाय दोष अविद्या भासदा है सत्ता नहीं अज्ञात भी रञ्च जांकी ।
ज्ञानवान को सर्व ही ब्रह्म भासे जीव जगत् माने मलिन बुद्धि जांकी ।
उत्तम अति यह पक्ष वेदान्त का है बुद्धिमान जाने नहीं और बाकी ।

ज्ञातसत्ताक एवायं प्रपञ्चः प्रागुदङ् नहि ।
अविद्यादोषतो भाति सत्ताऽज्ञाताऽस्य तन्नहि ॥५३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञस्य भाति समं ब्रह्माऽज्ञस्य जीवो जगत्तथा ।
वेदान्तेपूत्तमं पक्षमिमं जानन्ति पण्डिताः ॥५४॥

श्लोकार्थः—यह सारा प्रपञ्च ज्ञात सत्ताक ही है अर्थात् अपनी प्रतीतिकाल में ही है। प्रतीति के पूर्व-उत्तर काल में नहीं है। केवल अविद्या के दोष से ही भान होता है, इसलिये इसकी अज्ञात सत्ता नहीं ॥५३॥

ज्ञानवान् को सब कुछ ब्रह्म ही भान होता है। अज्ञानी को जीव-जगत् इत्यादि द्वैत प्रतीत होता है। यही वेदान्त का उत्तम पक्ष है, ऐसा पंडित लोग मानते हैं ॥५४॥

[२४]

लाम—लक्षय नूं लख अलक्ष होये लख्यां लक्ष लक्ष्य नहीं होर रेहा ।
लखे लक्ष्य लखां विचों इक कोई विना लक्ष लख्यां लख दुःख सेहा ।
लखे लक्ष्य ओही जिन्हां गुरु मिले विना गुरांदे किसे न लक्ष्य लेहा ।
लक्ष्य लखण नूं लखां उपाय कीते गुरां करी कृपा लक्ष्य तूं ही केहा ।

लक्षयित्वाऽथ लक्ष्यन्तदलक्ष्या व्यमास्महे ।
लक्षिते च परे लक्षे नान्यल्लक्षमशिष्यत ॥५५॥
मध्ये लक्षं तु लक्ष्यस्य कश्चिल्लक्षयिता भवेत् ।
अनालक्ष्येह लक्ष्यं तु लक्षं दुःखान्यसक्षत ॥५६॥
गुरूमाँल्लक्षयेल्लक्ष्यमलक्ष्यं गुरुभिर्विना ।
लक्ष्यस्य लक्षणायाहो उपाया लक्षशः कृताः ।
गुरुणा करुणाकारि त्वं लक्ष्यमित्यवोच्यत ॥५७॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकार्थः—अब विद्वान् का अनुभव कहते हैं कि—परब्रह्मरूप लक्ष को जान कर हम अलक्ष हो गये अर्थात् अवाङ्मनसगोचर ब्रह्म रूप हो गये। लक्षरूप परब्रह्म के अवगत हो जाने पर दूसरा कोई लक्ष शेष नहीं रहा ॥५५॥

लाखों के मध्य में लक्षब्रह्म को जानने वाला कोई एक ही हो सकता है। लक्ष ब्रह्म को जाने बिना लाखों दुःख सहन किये ॥५६॥

· गुरुमान अर्थात् आचार्यवान् पुरुष ही लक्ष ब्रह्म को जान सकता है। गुरुओं के बिना नहीं जान सकता। लक्ष्य के जानने के लिये लाखों उपाय किये, किन्तु गुरुदेव ने कृपा करके कहा कि तू ही लक्ष्य ब्रह्म है और इसी से ब्रह्म बोध हुआ ॥५७॥

[२५]

मीम—मोक्ष वैकुण्ठ के मध्य नाहीं ब्रह्मलोक में मोक्ष न जानिये जी।
मोक्ष चार प्रकार वैकुण्ठ वाला एह भी चित्त में रञ्च न आनिये जी।
आप मोक्ष स्वरूप अनूप हैं तू भ्रान्ति सिन्धु एह बन्ध पहचानिये जी।
दोष रहित सिद्धान्त वेदान्त का यह बुद्धिमान विचार कर मानिये जी।

मोक्षो वैकुण्ठदेशे वा ब्रह्मलोके न विद्यते।
चतुर्धा मोक्षरूपं यत् तन्न मन्येत किञ्चन ॥५८॥
मोक्षरूपस्त्वमेवासि भ्रान्तिमात्रं तु बन्धनम्।
निर्दोषो वेदसिद्धान्तो मान्येतायं महाधिया ॥५९॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्लोकार्थः—और कहा कि मोक्ष वैकुण्ठ में या ब्रह्म-लोक में नहीं है। चार प्रकार का मोक्ष जो लोक में कहा जाता है, वह वास्तव मोक्ष नहीं है ॥५८॥

तेरा वास्तव स्वरूप ही मोक्ष है, संसार-बन्धन केवल भ्रान्ति मात्र है। यह वेदान्त का निर्दोष सिद्धान्त विद्वान् लोग मानते हैं ॥५९॥

[२६]

नून—नाम साक्षी आदि हैन जेते विना द्वैत न कोई भी कह्या जावे।
कर द्वैत वाला मन ब्रह्म विषे नाना नाम धर के वेद तिसे गावे।
किवें आपणे आपदा बोध होवे जिज्ञासु जन देख के दया आवे।
पितां वांग कृपालु हो वेद भाखे सुणे मन धारे परम धाम पावे।

तस्य साक्ष्यादि नामानि नोच्यन्ते द्वैतमन्तरा।
द्वैताविष्टमना वेदो ब्रह्म गायति नामभिः ॥६०॥
कथमात्मानमीक्षेरन्नित्येवं दयया ध्रुवम्।
पितेव भाषते वेदो मत्वोक्तं तस्य मुच्यते ॥६१॥

श्लोकार्थः—इस ब्रह्म रूप आत्मा के साक्षी आदि नाम द्वैत बुद्धि से ही कथन किये जाते हैं। वेद भी द्वैत की कल्पना करके ही, "मुमुक्षु जन इस आत्मा का किसी प्रकार बोध प्राप्त कर सकें", इस दया के वश होकर साक्षी, कूटस्थ इत्यादि नामों के द्वारा ब्रह्म का गान करता है। वेद भगवान् पिता के समान कृपालु होकर उपदेश करता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। वेद के वचन को मानकर ही मुमुक्षु संसार-बन्धन से मुक्त हो सकता है ॥६०–६१॥

[२७]

वा——वेद विषे महावाक्य कहे तत्त्वमसि ते आदि लौं चार लीजे।
अर्थ यह जो ब्रह्मस्वरूप हैं तूं ऐसे जाण के चित्तमें धार लीजे।
वाच्य त्याग चैतन्य नूं एक जाणे कर लक्षणा कम्म संवार लीजे।
जनम देन वाला एह अज्ञान वैरी समय हत्थ आया इसे मार लीजे।

चत्वारि वेदवाक्यानि तत्त्वमस्यादिकानि वै।
महान्त्यर्थोऽयमेतेषां जीवो ब्रह्मेति तं धरेत् ॥६२॥
वाच्यत्यागेन चैतन्यमेकं ज्ञात्वा विचारतः।
लक्षणा गर्भकात्कार्यमात्मीयमुपपादयेत् ॥६३॥
जन्मदातारमज्ञानमरातिमनुमारयेत्।
कालोऽनुकूल एवायमागतोऽस्ति न विस्मरेत् ॥६४॥

श्लोकार्थः—वेद के तत्त्वमसि चार महावाक्य हैं। उनका अर्थ यह है कि जीव वास्तव में ब्रह्मस्वरूप है। अतः मुमुक्षु यही निश्चय करे ॥६२॥

विचार के द्वारा तत्-त्वम् पदों के वाच्यार्थ को त्याग कर, लक्षणा से एक चैतन्य को आत्मस्वरूप जान कर, अपने कार्य को सँवार लेवे ॥६३॥

जन्म मरण के देने वाले अज्ञानरूप शत्रु को मार लेवे अर्थात् उसको नाश करे। यही अनुकूल अवसर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ है, अतः इस बात को भूल न जावे ॥६४॥

[२८]

—हरि स्वरूप परपञ्च सारा वार वार एह वेद पुकारिया है।
त्वमसि आदि स्मृति कहे तैसे वासुदेव ही सर्व उचारिया है।
जगत् बाधसमानाधिकरण करके ऐसा वेद सिद्धान्त विचारिया है।
शुद्ध ब्रह्म अखण्ड दा बोध जिनको उन्हां अपना आप संवारिया है।

ब्रह्मैवेदं जगत्सर्वं वेदो वक्ति पुनः पुनः।
तत्त्वमस्यादिकस्तद्वद् वासुदेव इति स्मृतिः ॥६५॥
सामानाधिकरण्यं तु बाधे वेद विचारतः।
ब्रह्मात्मवेदिभिर्नूनमात्मा नीतः परं पदम् ॥६६॥

श्लोकार्थः—तत्त्वमसि आदि अनेक वेद वाक्यों के द्वारा वेद बार-बार यही कहता है कि यह सम्पूर्ण जगत् वास्तव में ब्रह्मस्वरूप है और 'वासुदेवः सर्वम्' इत्यादि स्मृति भी यही कह रही हैं ॥६५॥

जगत् ब्रह्म है, यह सामानाधिकरण्य वेद विचार से बाधसामानाधिकरण्य ही निश्चित है। शुद्ध आत्मा को ब्रह्म-स्वरूप जान कर ज्ञानी जनों ने आत्मा को मुक्ति पद में प्राप्त कर दिया ॥६६॥

[२९]

ये—जनम विद्वान् को फेर नाहीं जहाँ कहाँ शरीर उपाधि छुट्टे।
गङ्गा आदि जो देश पवित्रता में मगध आदि अपवित्र में देह छुट्टे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निश्चय एक है अद्वैत ज्ञानियों का मूल सहित प्रपञ्च दी जड़ पुट्टे।
तत्त्ववित्त कर्तव्य न रञ्च मानें जाण आपणां आप आनन्द लुट्टे।

विदुषो न पुनर्जन्म पिण्डं क्वापि परित्यजेत् ।
गङ्गादि तीर्थदेशे वा कुत्सिते मगधादिके ॥६७
अद्वैतनिश्चयो ज्ञानां जगतो मूलमुत्खनेत् ।
कृत्यं न मन्यते ज्ञानी स्वानन्दरसिको भवेत् ॥६८॥

श्लोकार्थः—विद्वान् कहीं भी गङ्गा आदि तीर्थ क्षेत्र में अथवा मगध आदि कुत्सित देश में देह को भले ही त्यागे, उसका पुनर्जन्म किसी प्रकार नहीं हो सकता ॥६७॥

ज्ञानियों का अद्वैत निश्चय मूल सहित जगत् का बाध कर देता है और ज्ञानी कुछ कर्तव्य न मानता हुआ सर्वदा स्वरूप आनन्द का अनुभव करता है ॥६८॥

[३०]

अलफ—आज्ञा वेद दी मन्न सारी धन्य धन्य एह जनम सँवारिआ मैं।
धन्य धन्य ओह गुरु कृपाल होये भवसागरों पार उतारिया मैं।
धन्य धन्य ओह वेद वेदान्त सारा जिसनूं जाणके भ्रम निवारिया मैं।
वेद मध्य जो सार सिद्धान्त जाता सोई वैत वना उचारिया मैं।

वेदाज्ञामाननेनाहं धन्योऽकार्षं जनुः फलम् ।
धन्यास्ते गुरवो धन्या यैरहं तारितो भवात् ॥६९॥
धन्यानि वेदशास्त्राणि यैर्भ्रमो विनिवारितः ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तो मया श्लोकैर्विचारितः ॥७०॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इतिः अनन्तश्रीविभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ स्वामिविष्णुदेवानन्दगिरि कृत अद्वैत-मुक्तावल्या द्वितीयो भागः समाप्तः ॥

श्लोकार्थः—शिष्य अपनी कृत्कृत्यता का कथन करता है कि वेद की आज्ञा मानकर मैं धन्य रूप हो गया। अपने [illegible] सफल कर लिया और गुरुजन भी अति धन्य हैं, जिन्होंने संसार-सागर से मुझको तार दिया ॥६९॥

वेद-शास्त्र भी धन्य हैं कि जिन्होंने मेरे अनादि भ्रम का निवारण कर दिया। ग्रन्थकार की उक्ति है कि—इस प्रकार सम्पूर्ण वेदान्त के सिद्धान्त को मैंने श्लोकों में उच्चारण किया ॥७०॥

अनन्तश्रीविभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज कृत अद्वैतमुक्तावलि के दूसरे भाग का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

	(ii) B.A./B.Sc. Part III Honours	Rs. 55.00
6.	(i) B.Ed. Full & Compartment subject	Rs. 70.00
	(ii) B.Ed. Additional subject	Rs. 25.00
7.	B.Com. Parts I, II & III (Full & Compartment).	Rs. 50.00
8.	(i) M.A. I (All subjects)	Rs. 60.00
	(ii) M.A. I Additional/Optional paper	Rs. 30.00
	(iii) M.A. II (All subjects)	Rs. 60.00
	(iv) M.A. II Additional/Optional Paper	Rs. 30.00
	(v) M.A. I & II (Re-appear candidates)	Rs. 25.00 per paper subject to a maximum of Rs. 60.00 in one part.
9.	(i) M.A. Semester System	Rs. 60.00
	(ii) M.Sc. Semester System	Rs. 70.00
	(iii) M.A./M.Sc. (Re-appear Candidates)	Rs. 25.00 per subject/paper subject to a maximum of the fee prescribed for the examination concerned.

REGISTRAR
Panjab University, Chandigarh

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi